८५

वास्थ्य और जल-चिकित्सा

1376

लेखक

श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

प्रिंसिपल, अग्रवाल विद्यालय इंटरमिडियट कालेज,

प्रयाग

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग ।

[चतुर्थ संस्करण] १९४० [मू० २)

प्रकाशक
श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक
सरयू प्रसाद पांडेय 'विशारद'
नागरी प्रेस, दारागंज,
प्रयाग।

समर्पण

हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ, कहानी-लेखक

मेरे शिष्य और मित्र

पं० गणेश जी पाण्डेय

के

कर कमलों में

यह पुस्तक प्रेम चिन्ह स्वरूप

सप्रेम समर्पित

केदारनाथ गुप्त

निवेदन

वेद भगवान का वाक्य है, "पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं," अर्थात् हे ईश्वर मैं सौ वर्ष तक देखूँ और सौ वर्ष तक जीवित रहूँ। यह इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य की आयु कम से कम सौ वर्ष की होनी चाहिये।

किन्तु इस समय हमारे देशवासियों की औसत आयु केवल २५ वर्ष रह गई है जब कि दूसरे सभ्य देश के निवासियों की औसत आयु ५० वर्ष से भी अधिक है। छोटी अवस्था में विवाह का हो जाना और आध्यात्मिक शिक्षा न होने के कारण बालकों द्वारा ब्रह्मचर्य को नष्ट करना आयु ह्रास करने के ये दो कारण हैं ही, किन्तु इनके अतिरिक्त रहन सहन और भोजन की अस्वाभाविकता का भी हमारे जीवन पर अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

आधुनिक सभ्यता के कारण हम खुली हवा में नंगे बदन निकलना नापसन्द करते हैं। स्थान की संकीर्णता के कारण जिस घर में १० मनुष्यों को रहना चाहिये वहां २० मनुष्य रहते हैं। इसका असर शरीर पर बहुत भारी पड़ता है। भोजन को पचाने और साफ शौच लाने के लिये हममें से अधिक सज्जन व्यायाम नहीं करते। भोजन हमारा प्रकृति से इतना दूर हो गया है कि इस विषय में जो कुछ कहा जाय थोड़ा है।

ईश्वर ने मनुष्य का खाने के लिये बगीचा में फलों की रचना की थी और उनमें उगा कर सब प्रकार के अन्नों का। फल को भी हम बिना नमक और मिर्च मिलाये नहीं खाते। खेत में लगा हुआ हरा चना कितना स्वास्थ्यप्रद होता है। वह सूखने पर पाला जाता है और उसकी हम लोग रोटी खाते हैं। यहाँ तक तो ठीक है। किन्तु हम केवल अपनी मूर्खता से उसका एक कदम खराबी की ओर और बढ़ा देते हैं।

आटे का चोकर निकालते हैं और मैदे की रोटी खाते हैं। चोकर वास्तव में आटे का हीर है। किन्तु ऐसे अमूल्य पदार्थ का मूल्य न समझकर हम उसे फेंक देते हैं। इसके अतिरिक्त इस मैदे से नाना प्रकार के पकवान और स्वादिष्ट भोजन बनाते हैं जो हमारे शरीर के लिये हानिकर हैं। इसी प्रकार तरकारियों की भी दुर्दशा की जाती है। तरकारियों को उबालकर खाना यहाँ तक ठीक है किन्तु उनके स्वाद को बढ़ाने के लिये नाना प्रकार के मसाले डालना शरीर के लिये अत्यन्त हानिकर है।

सभ्य समुदायों में फलाहार और अन्नाहार के अतिरिक्त माँस खाने की प्रथा बड़े वेग से बढ़ रही है। साथ ही साथ मदिरा, चाय, कहवा, भाँग और नाना प्रकार के दूसरे उत्तेजक पदार्थों का भी बड़े चाव के साथ सेवन किया जा रहा है। ये सब वस्तुएँ शरीर को नष्ट करने वाली हैं। वास्तव में मनुष्य में भोजन बिलकुल प्राकृतिक होना चाहिये।

हमारे पूर्वज सुखी इस लिये रहते थे और प्राकृतिक भोजन करते थे। इसलिये वे दीर्घजीवी और बलिष्ठ होते थे। हम खाने का नाम करकर —ठे आडम्बर में भले ही डाले रहें किन्तु हमारी रहन सहन और हमारा

भोजन इस समय सत्य दृष्टि से वास्तव में अप्राकृतिक है। इसका यह प्रभाव होता है कि हमारे शरीर में धीरे धीरे विकार उत्पन्न होता है जिसको विजातीय द्रव्य कहते हैं। यह विजातीय-द्रव्य क्रमशः शरीर को मोटा, फफ्फस और बदसूरत बनाता है। शरीर की शक्ति इतनी क्षीण हो जाती है कि वह बीमारी से मुठभेड़ नहीं कर सकता। और जरा सी बीमारी से बीमार हो जाता है और पञ्चत्व को प्राप्त होता है।

इन सब बीमारियों को दूर करने की शरीर को स्वस्थ रखकर दीर्घ जीवी बनाने की पवल एक ही औषधि है और वह है जल चिकित्सा। जल चिकित्सा शरीर के विजातीय द्रव्य को हटाकर उसे स्वस्थ बनाती है और मनुष्य को दीर्घजीवी करती है। शोक है कि देश में सब प्रकार की औषधियों का प्रचार तो बड़े वेग से हो रहा है किन्तु वास्तविक औषधि जल चिकित्सा की ओर लोगों का बहुत कम ध्यान है। यदि जल चिकित्सा के औषधालय घर घर खोल दिये जावें तो मनुष्य नित्य देह नीरोग रहे और उस पैसे को बचावे जो वह औषधियों में खर्च करता है।

वर्तमान पुस्तक इसी विषय पर लिखी गई है। इसमें जलचिकित्सा के सारे सिद्धान्तों का बड़ी सरल भाषा में प्रतिपादन किया गया है और मेरी समझ में और पुस्तकों की अपेक्षा इसका मूल्य भी कम है।

जर्मनी निवासी लुई कूने साहब जल-चिकित्सा के प्रवर्तक हैं। उन्होंने 'न्यू साइंस आफ हीलिङ्ग' नाम की पुस्तक लिखी है। वर्तमान पुस्तक उसी का निचोड़ है। बहुत सी ऐसी बातें ऐसी थी जिनको

अधिकांशतः कुई कूने के ही शब्दों में रखना आवश्यक समझा गया है। अतएव उन टेकनिकल अध्यायों का भाषानुवाद किया गया है और दूसरे अध्यायों की छाया ली गई है। इसके अतिरिक्त कूने साहब के और भी जो ग्रन्थ हैं उनका भी संक्षेप में सार दे दिया गया है। कुछ वर्षों का मेरा जो मनश्चिकित्सा का अनुभव है उसे भी दिया है। इस प्रकार यह पुस्तक तैयार की गई है। इसमें मेरी कृति बहुत कम है। केवल कूने साहब की रची हुई सामग्री है।

मैं इस पुस्तक को लिखने का चिरकाल से विचार कर रहा था किन्तु कार्य की अधिकता के कारण नहीं कर सका। यदि इस पुस्तक का प्रचार नवयुवकों में विशेष रूप से हुआ, जिनके लिये यह वास्तव में लिखी गई है, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा। ईश्वर हमारे देशवासियों को स्वस्थ बनावे, यही हमारी कामना है।

अभ्यास विद्यालय, प्रयाग
१४—५—३१

—केदारनाथ गुप्त, एम॰ ए॰

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

स्वास्थ्य और जल-चिकित्सा

१—जल चिकित्सा के प्रवर्तक लुई कूने साहब

लुई कूने साहब का जन्म जरमनी के लिपजिक नगर में हुआ था। ये जन्म के रोगी थे। २० वर्ष की आयु मे ये फेफड़ों और सर की पीड़ा से व्याकुल हुए। डाक्टरों का बहुतेरा इलाज किया, किन्तु उससे कोई लाभ न हुआ। उससे हारकर उन्होंने जल चिकित्सा की खोज किस प्रकार की, उसका विवरण य इस प्रकार लिखते हैं—

"सन १८६? ई० के लगभग मैंने समाचार पत्रों में पढ़ा कि लिपजिग नगर म प्रकृति चिकित्सा के कुछ प्रेमियों ने एक सभा खोली है और ये हर प्रकार का इलाज बिना औषधियों के करते हैं। इसके सञ्चालक मेलजर (Meltzer) साहब थे। मैं साहस बाँधकर इस सभा में शामिल हुआ और उपस्थित मण्डली के व्याख्यानों को सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उस दिन से मैं सभा की हर बैठक में पहुँचने लगा।"

"मेरे फेफड़े का दर्द क्रमशः बढ़ता गया। पेट में भी एक फोड़ा निकल आया। डरते-डरते मैंने एक सज्जन से पूछा कि भाई क्या मेरे रोग की भी दवा आप बता सकते हैं? उन्होंने कहा, हाँ, आप पानी की पट्टी फेफड़ों पर बाँधिये। मैंने बाँधना शुरू किया और पेट के ऊपर भी पट्टी बाँधी और इस समय की

प्राकृतिक-चिकित्सा के अनुसार भीगी चादर लपटी, पिचकारी लगाई, शरीर के अंगों को जल से सराबोर किया, किन्तु कुछ दर्द कम होने के अलावा और कोई विशेष लाभ न हुआ।"

"इसी बीच में मैं अपना दिमाग प्रकृति की ओर दौड़ाता रहा और कुछ नियम निर्धारित किये, कुछ यन्त्र बनाये और उनकी परीक्षा मैं अपने शरीर पर करने लगा। मुझे इसमें सफलता हुई। मेरी दशा सुधरने लगी और जिन लोगों ने मेरे कहने के अनुसार चिकित्सा की उनको भी लाभ हुआ। मुझे इस बात का पूरा विश्वास हो गया कि मेरे सिद्धांत बिलकुल सत्य हैं।"

"मैंने जब उन सिद्धान्तों का जिक्र सर्वसाधारण में करना शुरू किया तो वे मेरी हँसी उड़ाने लगे। डाक्टरों ने तो कहना शुरू किया कि लुई कुने पागल हो गया है। यह सनक गया है। मैंने अपने यंत्र उनके सामने रक्खे और एक बार परीक्षा करने की प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने उन यन्त्रों को कमरे के एक कोने में फेंक दिया, जहाँ थोड़े दिनों में वे धूल-धूसर खराब हो गये।"

"मैंने डाक्टरों की उपेक्षा की और परवाह न की। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि मैंने सब रोगों का कारण और उनका अच्छा करने की तरकीब ढूँढ़ निकाली है। मुझे इससे बड़ा संतोष हुआ। अब मैंने अपनी चिकित्सा का प्रचार सर्वसाधारण में करने का विचार किया। मैंने सोचा कि यदि कुछ रोगियों को मैं अच्छा कर सका तो जनता मेरी चिकित्सा पर अवश्य आप विश्वास करने लगेगी। मेरे घर में रोजगार होता था। मैंने सोचा यदि उसे छोड़कर मैं जल-चिकित्सा में अपना जीवन अर्पण करता हूँ तो इतने वर्षों का मेरा रोजगार नष्ट होता है। मेरे हृदय में उथल पुथल होने लगी। अन्त में अन्तरात्मा की विजय हुई। मैंने अपना सब काम बन्द करके १० अक्टूबर सन् १८८३ ई० को अपना एक जल चिकित्सा भवन खोला। धीरे-धीरे रोगी आर

पास इलाज के लिए आने लगे और मैंने उन्हें चंगा करना शुरू किया। सैकड़ा आशा-रहित रोगियों को मैंने अच्छा किया। वे भी अब मेरी चिकित्सा का गौरव चारों ओर बढ़ाने लगे।"

"मैंने अब जल चिकित्सा में योग करना शुरू किया। चेहरा देखकर मैं बीमारियों को पहचानने लगा। इसमें मुझे सौ की सौ सफलता मिलने लगी। मैंने 'मेहन स्नान' (Sitz bath) की खोज की जिसने रोगों को हटाने में मेरी बड़ी सहायता की। अब तो मुझे अपने इलाज पर इतना विश्वास हो गया है कि मैं चुनौती देकर कह सकता हूँ कि हर रोग को दूर कर सकता हूँ हाँ हर रोगी को नहीं अच्छा कर सकता। जिन रोगियों ने दवा खा-खाकर अपना सारा शरीर बिगाड़ रक्खा है, जिनके शरीर में कुछ दम ही नहीं रह गया, उनको मैं अलबत्ता रोगमुक्त नहीं कर सकता, हाँ उनके रोग का कम जरूर कर सकता हूँ।"

"पच्चीस वर्ष अथक परिश्रम करके मैंने अपने को अब बिल्कुल चंगा कर लिया है और दूसरे रोगियों को चंगा करने का दम भरता हूँ।

२—जल और उसका गुण

जल एक अपूर्व पदार्थ है जिसे ईश्वर ने पैदा किया है। जल की महिमा के बारे में ऋग्वेद में इस प्रकार लिखा है—

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्।

अर्थात् जल औषधि है। जल रोगों का नाश करता है। यह सब रोगों को दूर करता है। इसलिए यह तुम्हारा रोग दूर करे।

"अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्। अपामुत प्रशस्तये"

अर्थात् जल में अमर बना देने की शक्ति है। जल में रोग छुड़ा देने का गुण है। इस जल की वास्तव में ऐसी ही महिमा है।

जल नहाने के काम में आता है। स्नान जीवन धारण के लिये महान उपकारी है, शरीर भर के रन्ध्रों में जब गंदगी भर जाती है तो उस हम जल से मल-मलकर साफ करते हैं। स्नान की इसी वास्ते आवश्यकता पड़ती है कि शरीर रोज स्वच्छ रहे।

स्नान करने में अकथनीय आनन्द आता है। ज्योंही आप स्नान करते हैं त्योंही शरीर भर में एक प्रकार की बिजली सी दौड़ जाती है। शरीर ठण्डा हो जाता है और दिमाग ताजा हो जाता है। देह शुद्ध होने से बुद्धि भी पवित्र हो जाती है।

जब आप अधिक भोजन कर लें, जब आपको कब्जी डकारें आती हों तब एक या दो ग्लास ठण्डा पानी आप पी लीजिए, आपकी बदहज्मी दूर हो जायगी और आपका चित्त प्रसन्न हो जायगा। मैंने उन लोगों में इसकी परीक्षा की है जिनको बदहजमी रहती है और उन्हें लाभ हुआ है।

यह बात हमारे घरों में परम्परा से चली आई है कि प्रातःकाल चारपाई से उठते ही एक पाव पानी पी लेना चाहिये। इसका नाम उषःपान रक्खा गया है। प्रातःकाल जल पीने के अनेक गुण हैं, जैसे बदहज्मी दूर होती है, पेचिश और दिल मजबूत होते हैं, शरीर में फुर्ती आती है, आँखों की रोशनी बढ़ती है, बुद्धि बढ़ती है और मनुष्य दीर्घायु होता है।

प्रातः समय उठकर दो चार कुल्ली करके दाँतों को ठंडे पानी से रगड़ना चाहिये। ठंडा साफ करके मुँह और मसूड़ों को साफ कर लेना चाहिये। इसके पश्चात् धीरे धीरे घूम घूमकर पानी पीना चाहिये।

शरीर का पिया हुआ पानी अंतड़ियों में जाकर मूत्राशय और अन्य मल निकालने वाले कोठों को उत्तेजित करता है जिससे वे अपना काम भली भाँति करने लगते हैं। जो भोजन रात भर विश्राम लेने के पश्चात् भी नहीं पचा वह शीघ्र पच जाता है

और हानिकारक वस्तुयें पेशाब के द्वारा बाहर निकल जाती हैं। यह स्मरण रहे कि प्रात: काल शौच से पहिले पानी पिया जाय।

उष:पान क पश्चात् शौच जाने में पाखाना बहुत साफ होता है। मलावरोध मे प्राय: बवासीर का रोग हो जाता है। वह बवासीर उष:पान से अच्छी हो जाती है। जब पानी अँतड़ियों में जाता है तो वह उसकी दीवालों में लगे हुये खुश्क मल को ढीला करने लगता है और अँतड़ियाँ बिल्कुल साफ हो जाती हैं। संग्रहणी, उदरशूल आदि भयानक पेट की बीमारियाँ भी उष:पान से शीघ्र दूर होती हैं।

उष:पान से मूत्र सम्बन्धी सारे रोग अच्छे होते हैं। कुछ लोग जब पेशाब करते हैं तो उनके जननेन्द्रिय में जलन होती है, कुछ कुछ पेशाब क साथ सफेदी जाती है। कुछ लोगों के गुर्दे में पथरी पड़ जाती है जिससे उनको कभी कभी शूल भी उठता है। उष:पान से ये सारे विकार थोड़े समय में दूर हो जाते हैं। कहाँ तक कहा जाय, उष:पान से गुण ही गुण हैं।

जिस प्रकार प्रात: काल जल पीने के लिये कहा गया है, उसी प्रकार सोते समय भी जलपान करना चाहिये। जल पीकर सोने म निद्रा गहरी आती है। बुरे स्वप्न नहीं दिखलाई पड़ते और स्वप्न-दोष नहीं होता। हमारे देश का विद्यार्थी-दल आजकल स्वप्न-दोष से बेतरह पीड़ित हो रहा है। उन्हें उससे बचने के लिये प्रात: और सोते समय पानी पीकर परीक्षा करनी चाहिये।

जल और जल चिकित्सा

हम लोग जो भोजन करते हैं वह सब हजम नहीं होता, कुछ न कुछ बिना हजम हुये पेट में पड़ा रहता है, अपच भोजन से थोड़ी स्टीम रोज ही बना करती है। स्टीम को नाश करने के लिये ठंढा पानी सब से बड़ा शत्रु है। भाप जब किसी ठंडी सतह को छूती है तो वह फिर पानी बन जाती है। हमारे

शरीर में भी, जो विकृत-पदार्थों के रहने से स्टीम बनती है वा ठंडे पानी में स्नान करते ही पानी होकर नीचे पेड़ू में चली जाती है और वहाँ से वह पाखाने और पेशाब के रास्ते बाहर चली जाती है, और शरीर एक दम ठंडा हो जाता है।

जिस दिन हम स्नान नहीं करते उस दिन ज्वरांश-सा मालूम होता है। न तो अच्छी तरह नींद आती है और न भली प्रकार किसी काम में चित्त लगता है। मन भी मलीन रहता है। यदि हम कुछ रोज़ तक लगातार स्नान न करें तो शरीर में अपार अधिक तादाद में स्टीम जमा हो जाती है और हमें ज्वर आ जाता है। इतना ही नहीं यह स्टीम सारे शरीर में फैलकर हमारे शरीर भर के कल पुर्जों को बिगाड़ देता है। प्राकृतिक चिकित्सा में यह सब विकार बिना स्नानों के दूर कभी नहीं हो सकते। स्नान के भेद किसी दूसरे प्रकरण में विस्तार पूर्वक लिखे जायँगे, यहाँ तो इतना ही उल्लेख करना काफ़ी है कि लगातार उदर स्नान महा-स्नान आदि स्नानों के लेने रहने से ये सब विकार दूर हो जाते हैं और शरीर फिर स्वस्थ हो जाता है। शुरू शुरू में यदि मनुष्य वैज्ञानिक ढङ्ग से आहार विहार के साथ स्नान भी किया करे तो ऐसे कठिन समय का उसे सामना ही न करना पड़े।

मेरी माँ की अवस्था इस समय ६५ वर्ष की है। वे साधारणतया स्वस्थ हैं। जब उन्हें ज्वर आता है तो वे चिकित्सा नहीं करतीं, भोजन छोड़ देती हैं और ठंडे जल से सारे शरीर का स्नान करती हैं। परिणाम इसका यह होता है कि वे एक या चार रोज़ में अच्छी हो जाती हैं। पहिले तो मेरी समझ में नहीं आता था कि वे किस प्रकार अच्छी हो जाती हैं किन्तु जब मुझे जल चिकित्सा से प्रेम हुआ, तब मैंने समझा कि स्नान से उनका नीरोग हो जाना अत्यन्त वैज्ञानिक है।

उड़ीसा और पूर्वीय बंगाल में ज्वर आने पर ठंडे पानी से

स्नान करने और ठंडे चावल का भात खाने की प्रथा है। इससे उनका बुखार अच्छा हो जाता है।

मेरी बच्ची आग से जल गई थी। मैंने उसपर ठंडे पानी से गीली करके मिट्टी बाँधी। वह चार रोज में अच्छी हो गई।

जल चिकित्सा के जल का बड़ा महत्त्व है। लुई कूने ने ठंडे जल से ही स्नान करा कराकर हजारों रोगियों को स्वस्थ किया है। उन्होंने जिन रोगियों को अच्छा किया है उनकी एक लम्बी सूची भी दी है। वास्तव में कूने साहब के निकाले हुये स्नान ऐसे ही हैं। खर्च कुछ नहीं है, लाभ बहुत है। हमें इनसे लाभ उठाना चाहिये और जल के महत्त्व को समझना चाहिये।

३–मिट्टी और उसके गुण

मिट्टी एक विचित्र पदार्थ है, जिसके गुण वर्णन करना कठिन है। संसार के जितने खाने के पदार्थ हैं वे सब मिट्टी से उत्पन्न होते हैं। गेहूँ, चना, ज्वार, बाजरा, अरहर आदि जितने अन्न हैं, वे सब मिट्टी से उत्पन्न होते हैं। सेब, नासपाती, अंगूर, केला, सतरा आदि जितने फल हैं, सब मिट्टी से उत्पन्न होते हैं। गुलाब, गेंदा, चमेली, बेला आदि जितने फूल हैं वे सब मिट्टी से उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार की मिट्टी होगी, उसी प्रकार के अन्न, फल और फूल उत्पन्न होंगे।

डाक्टर लोग प्रायः मिक्सचर (Mixture) बनाकर रोगी को बड़े अभिमान के साथ देते हैं, किन्तु मिट्टी में न मालूम कितने पदार्थों का सम्मिश्रण है। इसमें ऐसे-ऐसे पदार्थ मिले हैं जिनका पता लोगों को अभी तक नहीं चला। ऐसा उत्तम दर्जे का (Mixture) भला किसको लाभ न करेगा।

मिट्टी वास्तव में हमारा बिछौना है, मिट्टी हमारे रहने का स्थान है, और मिट्टी हमारे रोज के इस्तेमाल की चीज है। घर

सुगन्धित होता है। हण्डिया में लोग भोजन पकाते हैं। दाल, भात, तरकारी जितनी मिट्टी के बर्तनों की बनी अच्छी होती है उतनी शायद किसी धातु के बर्तनों की अच्छी नहीं होती। इसके अलावा धातु के बर्तनों से ऐसे पदार्थ भी भोजन में मिल सकते हैं जो शरीर के लिए हानिकारक हों, किन्तु मिट्टी के बर्तनों में पकाने से यह डर नहीं रहता।

मिट्टी से कपड़े साफ होते हैं। सज्जी मिट्टी एक प्रकार की मिट्टी है, जिसे धोबी लोग कपड़ों के धोने में प्रायः इस्तेमाल करते हैं और उससे कपड़े साफ भी काफी होते हैं।

मिट्टी में गला देने वाली और शोषक शक्ति मौजूद होती है। यदि किसी को फोड़ा हो गया हो तो उसके ऊपर मिट्टी की पुल्टिस लगाने से वह फोड़ा पक जायगा और उससे मवाद बाहर निकल जायगा। कभी कभी ऐसा होता है कि फोड़ा फुटता नहीं, बैठ जाता है। इस प्रकार मिट्टी की पुल्टिस फोड़े को बैठा देती है।

जर्मनी के प्रसिद्ध डाक्टर एडाल्फ जुस्ट (Abolph Jute) ने अपनी Return to Nature नामक पुस्तक में निम्नलिखित रोगों को मिट्टी से अच्छा होता हुआ बतलाया है।

सब प्रकार के चोट से होने वाले घाव और उनसे उत्पन्न होने वाले सब प्रकार के बुखार और चर्म रोग, कटने का घाव छुरी का घाव, गोली का घाव, आग से जलने का घाव, जीव जन्तु द्वारा काटे हुए घाव, कैन्सर, कुष्टरोग आदि सब मिट्टी से अच्छे किये हैं।

जल-चिकित्सा में मिट्टी का अधिक महत्व है। उसकी ठंडी पट्टी प्रायः पेड़ू में दी जाती है जिससे अनेक रोग दूर होते हैं।

पेड़ू में पट्टी देने से गठिया, वात रोग, मूत्राशय और

उसे सानकर गाढ़ा कर लीजिये, पतली न होने पावे। फिर आध इञ्च मोटी तह करके उसे जहाँ रखना हो, रख दीजिये और ऊपर कपड़ा रखकर बाँध दीजिये।

(२) दूसरी तरकीब—एक कपड़े में उपरोक्त ढङ्ग से आध इञ्च मोटी मिट्टी रखिये और उसे जिस स्थान पर रखना हो रख दीजिये। इसके पश्चात ऊपर एक सूखी कपड़ा रखिये और उसके ऊपर एक ऊनी कपड़ा रखकर बाँध दीजिये।

४—पाँच तत्वों से बना हुआ शरीर कैसे काम करता है

यह शरीर पाँच तत्वों से मिलकर बना है। ये पाँचों तत्व मिट्टी, पानी, गरमी, आकाश और वायु हैं। यह शरीर ही क्या सारा संसार इन्हीं पाँचों तत्वों से रचा हुआ है।

हम यहाँ यह बतलाना चाहते हैं कि यह शरीर किस प्रकार काम करता है। डाक्टरों ने इसकी उपमा एक स्टीम इञ्जिन से दी है। जिस प्रकार इञ्जन को चलाने के लिये कोयला, पानी, अग्नि और हवा की आवश्यकता है उसी प्रकार इस शरीर को चलाने के लिये हिसाब के साथ भोजन, जल, गरमी और हवा की आवश्यकता है। जिस प्रकार मछली पानी में इधर उधर उछलती रहती है, उसी प्रकार मनुष्य हवा में इधर उधर घूमता है। हिसाब से इञ्जन को यदि कोयला, पानी, आग, हवा मिलती जाय तो वह अच्छी तरह चलता है, इनमें से यदि किसी तत्व की अधिकता हो जाय तो इञ्जन बिगड़ जाता है। उसकी चाल में फर्क पड़ जाता है। इसी प्रकार अग्नि, जल हवा गरमी इन तत्वों में किसी तत्व की कमी हुई अथवा किसी की अधिकता हो गई तो फिर यह मशीन रूपी शरीर काम नहीं कर सकता।

स्टीम इञ्जिन के लिये पत्थर का अच्छा से अच्छा कोयला

मँगवाया जाता है। उसमें साफ से साफ पानी देने का प्रबन्ध होता है। तब कहीं स्टीम इञ्जिन अपना काम सुचारु रूप से करता है। उसी प्रकार अच्छा से अच्छा, शीघ्र पचनेवाला भोजन जब इस शरीर में पहुँचाया जाय और साफ से साफ जल पानी दिया जाय तब कहीं यह शरीर स्वस्थ रह सकता है।

जिस प्रकार भोजन पहुँचाने का ख्याल हमें रहता है उसी प्रकार पचने के बाद बचे हुए मल का निकालना भी हमारे लिए आवश्यक है। जिस प्रकार इञ्जिन चलाने के लिए कोयले की राख को निकालकर फेंक देने की जरूरत होती है नहीं तो नया कोयला डाला नहीं जा सकता, उसी प्रकार शरीर के मल का निकालना भी जरूरी है।

यह क्रिया बराबर चलती रहती है। जो शरीर का भोजन, पानी देना जानते हैं और जिन्हें शरीर से मल निकालना भी मालूम है। वे कभी भी बीमार नहीं पड़ सकते। व दीर्घजीवी होते हैं।

५—रोग किस प्रकार उत्पन्न होता है

ईश्वर ने इस मशीन रूपी देह को अत्यन्त पूर्ण बनाया है। इसका काम यदि सुचारु रूप से चलता जाय तो यह कभी बिगड़ नहीं सकती। इसके साथ जब हम ज्यादती करने लगते हैं, आहार और विहार में जब खराबी पैदा होती है तो यह मशीन भी बिगड़ने लगती है। मिथ्या आहार और विहार से शरीर के भीतर एक प्रकार का मल संचित हो जाता है, जो शरीर के काम में रुकावट डालता है जिससे रोग उत्पन्न हो जाता है। इस रुकावट डालने वाले मल का नाम "विजातीय द्रव्य है।"

कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर में विजातीय द्रव्य के उपस्थित रहने ही का नाम रोग है। जो दरवाजे बन्द हैं जिनके

द्वारा विजातीय-द्रव्य शरीर के अन्दर पहुँचता है। नाक के द्वारा फेफड़ों में और मुँह के द्वारा मेदे में। इन दोनों दरवाजों में संतरी पहरा देने के लिये खड़े होते हैं। ये दोनों संतरी नाक और जिह्वा हैं।

हमारे ये दोनों सतरी अब किसी काम के नहीं रह गये। नाक बिना रोक-टोक हर प्रकार की वायु फेफड़ों में जाने की आज्ञा दे देती है। जिह्वा हर प्रकार का भोजन मेदे में पहुँचा देती है। एक मनुष्य तम्बाकू के धुयें को सुड़कता चला जाता है और उसे कुछ भी परेशानी नहीं होती। जिह्वा कड़ुआ, खट्टा सब प्रकार का भोजन पेट में घुसेड़ती चली जाती है। लोगों ने ५६ प्रकार के भोजन निकाल डाले हैं जिनका कुछ शताब्दियों पहिले पता भी नहीं था। आजकल के नवजवानों का बिना इतने प्रकार के भोजन किये पेट नहीं भरता। खराबी की हद हो गई है। ईश्वर ही इस खराबी से बचावे।

आजकल गरिष्ठ और अधिक भोजन करने की प्रथा भी बढ़ गई है। इससे मेदा कमज़ोर हो जाता है। एक उदाहरण से इसकी सत्यता अच्छी तरह समझी जा सकती है। मान लीजिये एक बैल १० मन का बोझ खींच सकता है। उसको चाबुक से मारने पर वह १५ मन का बोझा खींच सकता है। यदि इसी प्रकार उससे चाबुक ही से रोज काम लिया जाय तो एक दिन ऐसा समय आयेगा जब वह साधारणतया १० मन का बोझ भी न खींच सकेगा। इसी प्रकार यदि मेदे या अन्य कोठों से अधिक काम लिया गया तो कुछ समय के पश्चात् वे निकम्मे हो जाते हैं और अपना साधारण काम भी नहीं कर सकते।

स्वस्थ-मनुष्य के लिये भोजन की एक तादाद है जिसे वह पचा सकता है। इस तादाद के बाहर जो वस्तु होती है, वह मेदे के लिये विष है। यदि वह निकल न गई तो वही शरीर के

भीतर विजातीय द्रव्य उत्पन्न करती है। इसलिए खाने और पीने में नियमित होना स्वास्थ्य की कुञ्जी है।

अब यह एक विचारणीय बात है कि जो विजातीय-द्रव्य शरीर के भीतर उत्पन्न हो जाता है उसका क्या होता है? वह वास्तव में शरीर के कुछ अवयवों द्वारा निकालकर बाहर फेंक दिया जाता है। फेफड़ों से मल बाहर जाने वाली श्वास द्वारा निकल जाता है। कुछ मल अँतड़ियों के द्वारा पाखाने के रूप में बाहर हो जाता है, कुछ खून में मिलकर पसीने के द्वारा बाहर जाता है। और कुछ पेशाब के रास्ते निकल जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीर हमेशा इस बात की कोशिश करता है कि हमारे पापों का बुरा प्रभाव न पड़ने पाए, यदि हम शरीर को विजातीय द्रव्य से लबालब भर दें तो शरीर विजातीय-द्रव्य को बाहर निकालने का काम पूर्णतया नहीं कर सकेगा। परिणाम इसका यह होगा कि वह विजातीय द्रव्य को अपने भीतर ही स्थान देने लगेगा। इस विजातीय-द्रव्य में कोई पोषक पदार्थ नहीं होता, अतएव शरीर के लिए यह हानिकारक है, यह खून के दौरान में बाधा डालता है और हाजमे को बिगाड़ देता है। विजातीय द्रव्य धीरे धीरे भिन्न भिन्न स्थानों में विशेषतया मल निकालने वाली इन्द्रियों के समीप जमने लगता है। एक बार जब विजातीय द्रव्य जमने लगता है तो वह बराबर जमता जाता है। हाँ उस समय उसका जमना रुक सकता है जब आहार और विहार बदल दिया जाता है।

अब शरीर की सूरत शक्ल में अन्तर पड़ने लगता है और पहिले उन्हीं लोगों को मालूम होता है जो इस विषय के ज्ञाता हैं। हमें भले ही न मालूम हो किन्तु शरीर उसी समय से रोगी होना शुरू हो जाता है जबसे विजातीय-द्रव्य इकट्ठा होने लगता है। रोग इस प्रकार धीरे धीरे बढ़ता है कि पुरुष या स्त्री

को मालूम तक नहीं होता। बहुत समय के पश्चात् उसे जान पड़ता है कि मेरा शरीर बिगड़ रहा है। उसकी भूख बन्द हो जाती है, वह दौड़ धूप का काम नहीं कर सकता और दिमागी काम देर तक नहीं कर सकता। उसकी दशा उस समय तक सुधर सकती है जब तक गुर्दे, फेफड़े और चमड़ा अपने अपने काम करते रहते हैं किन्तु, जब इनके काम निर्विघ्न नहीं होने पाते तो वह भारीपन मालूम करने लगता है और उसका शरीर उसे बोझ सा प्रतीत होने लगता है।

विजातीय-द्रव्य धीरे-धीरे शरीर भर में फैलने लगता है और शरीर के ऊपरी भाग में वह विशेषकर अपना घर बनाता है। गर्दन के भाग में यह स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। जब गर्दन मोड़ी जाती है तो तनाव मालूम होता है। उससे यह भी पता चल जाता है कि विजातीय-द्रव्य किस मार्ग से ऊपर तक पहुँचा है।

यह तो हुई इस शरीर की वर्तमान दशा की बात। बहुतसे लड़के माता के गर्भ से विजातीय-द्रव्य लेकर उत्पन्न होते हैं। यही कारण है कि बहुत से लड़के बाल्यावस्था में नाना प्रकार की बीमारियों से पीड़ित रहते हैं। विजातीय-द्रव्य पहिले पेट में जमा होता है और वहाँ से शरीर भर में फैलता है। विजातीय द्रव्य के मौजूद रहने से शरीर के भिन्न भिन्न कोठों को फैलाने का अवसर नहीं मिलता। अतएव उनकी स्वाभाविक वृद्धि मारी जाती है।

चोर की तरह विजातीय-द्रव्य अधिक समय तक छिपा पड़ा रहता है और अनुकूल मौका पाकर एकदम उभड़ पड़ता है। जिन पदार्थो से विजातीय-द्रव्य बना है वे घुल सकते हैं और उनके परमाणु अलग किये जा सकते हैं।

शरीर के भीतर जोश उमड़ता रहता है जो वास्तव में बड़े

भीतर विजातीय-द्रव्य उत्पन्न करती है। इसलिए खाने और पीने में नियमित होना स्वास्थ्य की कुञ्जी है।

अब यह एक विचारणीय बात है कि जो विजातीय-द्रव्य शरीर के भीतर उत्पन्न हो जाता है उसका क्या होता है? वह वास्तव में शरीर के कुछ अवयवों द्वारा निकालकर बाहर फेंक दिया जाता है। फेफड़ों से मल बाहर जाने वाली श्वास द्वारा निकल जाता है। कुछ मल अँतड़ियों के द्वारा पाखाने के रूप में बाहर हो जाता है, कुछ खून में मिलकर पसीने के द्वारा बाहर जाता है। और कुछ पेशाब के रास्ते निकल जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीर हमेशा इस बात की कोशिश करता है कि हमारे पापों का बुरा प्रभाव न पड़ने पाये, यदि हम शरीर को विजातीय द्रव्य से लबालब भर दें तो शरीर विजातीय-द्रव्य को बाहर निकालने का काम पूर्णतया नहीं कर सकेगा। परिणाम इसका यह होगा कि वह विजातीय-द्रव्य को अपने भीतर ही स्थान देने लगेगा। इस विजातीय-द्रव्य में कोई पोषक पदार्थ नहीं होता, अतएव शरीर के लिए यह हानिकारक है, यह खून के दौरान में बाधा डालता है और हाजमे को बिगाड़ देता है। विजातीय-द्रव्य धीरे धीरे भिन्न-भिन्न स्थानों में विशेषतया मल निकालने वाली इन्द्रियों के समीप जम जाता है। एक बार जब विजातीय द्रव्य जमने लगता है तो वह बराबर जमता जाता है। हाँ उस समय उसका जमना रुक सकता है जब आहार और विहार बदल दिया जाता है।

अब शरीर की सूरत शक्ल में अन्तर पड़ने लगता है और पहिले उन्हीं लोगों को मालूम होता है जो इस विषय के ज्ञाता हैं। वह भले ही न मालूम हो किन्तु शरीर उसी समय से रोगी होना शुरू हो जाता है जबसे विजातीय-द्रव्य इकट्ठा होने लगता है। रोग इस प्रकार धीरे धीरे बढ़ता है कि पुरुष या स्त्री

को मालूम तक नहीं होता। बहुत समय के पश्चात् उसे जान पड़ता है कि मेरा शरीर बिगड़ रहा है। उसकी भूख बन्द हो जाती है, वह दौड़ धूप का काम नहीं कर सकता और दिमागी काम देर तक नहीं कर सकता। उसकी दशा उस समय तक सुधर सकती है जब तक गुर्दे, फेफड़े और चमड़ा अपने अपने काम करते रहते हैं किन्तु, जब इनके काम निर्विघ्न नहीं होने पाते तो वह भारीपन मालूम करने लगता है और उसका शरीर उसे बोझ सा प्रतीत होने लगता है।

विजातीय-द्रव्य धीरे-धीरे शरीर भर में फैलने लगता है और शरीर के ऊपरी भाग में वह विशेषकर अपना घर बनाता है। गर्दन के भाग में यह स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। जब गर्दन मोड़ी जाती है तो तनाव मालूम होता है। उससे यह भी पता चल जाता है कि विजातीय-द्रव्य किस मार्ग से ऊपर तक पहुँचा है।

यह तो हुई इस शरीर की वर्तमान दशा की बात। बहुत से लड़के माता के गर्भ से विजातीय-द्रव्य लेकर उत्पन्न होते हैं। इसी कारण है कि बहुत से लड़के बाल्यावस्था में नाना प्रकार की बीमारियों से पीड़ित रहते हैं। विजातीय-द्रव्य पहिले पेट में जमा होता है और वहाँ से शरीर भर में फैलता है। विजातीय द्रव्य के मौजूद रहने से शरीर के भिन्न भिन्न कोठों को फैलाने का अवसर नहीं मिलता। अतएव उनकी स्वाभाविक वृद्धि मारी जाती है।

चोर की तरह विजातीय-द्रव्य अधिक समय तक छिपा पड़ा रहता है और अनुकूल मौका पाकर एकदम उभड़ पड़ता है। जिन पदार्थों से विजातीय-द्रव्य बना है वे घुल सकते हैं और उनके परमाणु अलग किये जा सकते हैं।

शरीर के भीतर जोश उभड़ता रहता है जो वास्तव में बड़े

अब यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि वास्तव में स्वस्थ पुरुष कौन है ? इसका उत्तर जितना कठिन है उतना ही सरल भी है। स्वस्थ पुरुष वह पुरुष है जिसकी सब इन्द्रियाँ अपना अपना काम करती हों। नाक अपना काम करती हो, आँखों में चश्मा लगाने की जरूरत न हो, दिमाग अपना काम करता हो, खून साफ हो, पाखाना साफ होता हो, शरीर फुर्तीला मालूम होता हो, शरीर में हमेशा तेजी हो, सुस्ती कभी न मालूम होती हो, काम क्रोध से दूर रहे, जब इस प्रकार का मनुष्य हो तो उसे स्वस्थ पुरुष कहते हैं।

आदमी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग सब दुरुस्त हों। लेकिन यदि चश्मा लगाना पड़ता है तो उसे हम स्वस्थ नहीं कह सकते। उसकी आँखें दुरुस्त हों, उसका दिमाग दुरुस्त हो लेकिन यदि वह बहरा हो तो तन्दुरुस्त आदमी में नहीं गिना जा सकता, उसी प्रकार यदि बाहरी सब इन्द्रियाँ अपना अपना काम करती हों लेकिन यदि उसे बदहजमी हो तो वह भी कदापि तन्दुरुस्त नहीं कहा जा सकता। तन्दुरुस्त मनुष्य में वे सब अवस्थायें होनी चाहिये जो ऊपर कही जा चुकी हैं।

लुइकूने साहब ने एक और पहिचान तन्दुरुस्त होने की बतलाई है और वह यह है कि उसका पाखाना बँधा हुआ हो और जब मनुष्य शौच कर चुके तो उसकी गुदा में पाखाना न लगे। पशुओं की ओर ध्यान देकर देखने से मालूम हो सकता है कि उनका पाखाना बँधा होता है और उसमें चिप चिपाहट नहीं होती, बकरी घास पात खाती है, वह लेंडी हगती है, जब वह लेंडी करती है तो उसकी गुदा में लेंडी का कुछ भी अंश नहीं लगता।

बन्दर को लीजिए जो मनुष्य प्राणी से बहुत कुछ मिलता जुलता है, उसका पाखाना बँधा रहता है और उसकी गुदा में

पाखाना नहीं लगता। गाय, भैंस, बैल इत्यादि भी इसी प्रकार से पाखाना करते हैं। इन पशुओं को आबदस्त लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

एक बात इसके साथ और भी ध्यान देने योग्य है और वह यह है कि मनुष्य के पाखाने में बदबू भी न होनी चाहिये। उपरोक्त बतलाये हुये पशुओं के पाखाने में कभी बदबू देखने में नहीं आती, इसी प्रकार मनुष्य के पाखाने का हाल होना चाहिये वास्तव में मनुष्य जो आबदस्त लेता है वह केवल गुदा को और भी अधिक साफ और ठंडा करने के लिए होना चाहिये।

मनुष्य यदि प्राकृतिक भोजन करे। उसका रहन-सहन यदि प्राकृतिक होवे तो ऐसा होना कुछ कठिन नहीं है, कोई भी कुछ दिन नियम से रह कर अनुभव कर सकता है। हमने तो इसका अनुभव खूब किया है और इस समय भी कर रहे हैं।

निरोग मनुष्य का एक लक्षण और है, वह है उसका सुन्दर रूप। जितने निरोग स्त्री या पुरुष होते हैं, उन्हें खूबसूरत होना चाहिये। जङ्गल के पशु पक्षी कितने सुन्दर और मोहक होते हैं। जब मनुष्य के शरीर में विजातीय-द्रव्य इकट्ठा हो जाता है तब वह कुरूप हो जाता है। आपने प्रायः देखा होगा किसी की गरदन मोटी हो जाती है, किसी के पैर फूल जाते हैं, किसी का पेट सामने निकल आता है, किसी का मुँह भभराया होता है। यह सब विजातीय-द्रव्य संचित होने के चिन्ह हैं, शरीर से जब विजातीय-द्रव्य निकल जाता है तो मनुष्य सुन्दर और निरोग हो जाता है।

वास्तव में देखा जाय तो मालूम होगा कि विजातीय-द्रव्य शुरू शुरू में अपथ्य से प्रारम्भ होता है। अपथ्य अस्वाभाविक रहन-सहन से होता है। ज्यों-ज्यों लोग माँस-मदिरे का अधिक सेवन करते हैं, ज्यों-ज्यों खट्टे-मीठे पदार्थ खाते जाते हैं, ज्यों

ज्यों चीजों को अस्वाभाविक ढङ्ग से पकाकर और उनका सत निकाल कर लोग भोजन करते हैं त्यों-त्यों उनके मेदे को अधिक जोर पड़ता जाता है, जिससे उनका मेदा धीरे-धीरे अपना काम कम करने लगता है।

मेदे के साथ अत्याचार हम बचपन से ही करना शुरू कर देते हैं। बहुत-सी अंग्रेजी पढ़ी-लिखी मातायें अपने बच्चे को दूध नहीं पिलातीं, जो उनका स्वाभाविक आहार है। नाना प्रकार के कृत्रिम आहार उन्हें दिये जाते हैं जो उनके मेदे के बिलकुल प्रतिकूल हैं।

अप्राकृतिक आहार को शरीर अपना शत्रु समझता है और वह आहार कभी दस्त, कभी कै, और कभी अन्य रूपों में बाहर निकलता है। यह बिना पचे हुए मेदे में होता है और अँतड़ियों में पहुँचता है, वहाँ से वह बाहर निकल जाता है। उससे लाभ नहीं होता। यदि वह न निकला और रक्त में मिल गया तो फिर वह जमा होता है।

हमारा भोजन एक रोज अप्राकृतिक हो तो कोई बात नहीं है किन्तु उसी प्रकार का भोजन जब रोज ही होता रहता है तो अस्वाभाविक और अपक्व भोजन विजातीय-द्रव्य के रूप में खून में जरूर ही मिलता है। विजातीय-द्रव्य सब से पहिले पेड़ू में इकट्ठा होता है, उसमें फिर सड़न पैदा होती है और फिर ऊपर और नीचे चारों ओर फूलता है। शरीर को उत्ते-जित करने वाली आकस्मिक घटनाओं का ठंढा, चोट, मनो विकार आदि का प्रभाव विजतीय-द्रव्य पर पड़ता है और वह अपने उत्पत्ति स्थान की ओर फिर वापस जाने लगता है। जोड़ों में जब वह रुकता है तो उससे सूजन पैदा होती है। किन्तु इसके बाद वह फिर जमा होता जाता है।

शरीर के जिस अंग में एक बार विजातीय-द्रव्य एकत्र हो

जाता है तो वह अपना काम ठीक तौर से नहीं कर सकता। उस अंग के रक्त प्रवाह में भी रूकावट पड़ती है। धीरे-धीरे वह अंग ठंडा हो जाता है और उसमें फिर गर्मी लाना कठिन हो जाता है।

जिसमें विजातीय-द्रव्य जितना अधिक होगा वह उतना ही अधिक रोगों का शिकार होगा। विजातीय-द्रव्य का ज्ञान शुरू में मनुष्य को नहीं होता। उसकी मात्रा जब प्रत्यक्ष रूप में बढ़ जाती है तब वह उसका प्रत्यक्ष अनुभव करता है। विजातीय द्रव्य की शरीर में अधिकता हो जाती है तो उसमें सड़न पैदा होती है और सड़न से गरमी होती है। जब अधिक सड़न से अधिक गर्मी बढ़ जाती है तो उसी का नाम ज्वर होता है। प्रकृति विजातीय-द्रव्य को पसीने के रूप में बाहर निकालने की कोशिश करती है। आपने लोगों को कहते सुना होगा कि रोगी को रजाई ओढ़ा दो जिसमें उसे खूब पसीना आजावे क्योंकि पसीना निकलने से ज्वर दूर हो जायगा।

इस प्रकार विजातीय-द्रव्य पसीने के रूप में निकल जाता है तो ज्वर दूर हो जाता है, किन्तु कहीं अप्राकृतिक दवाओं के द्वारा वह बीच में रोक दिया जाय तो सड़ने वाला विजातीय द्रव्य भीतर ही रह जाता है और निकट भविष्य में और भी भीषण बीमारी फैलने की आशङ्का होती है। दूसरी बार उसी रोगी को जब फिर ज्वर होता है तो उसकी भीषणता बढ़ जाती है और भीषणता की दृष्टि से ज्वर के काला ज्वर, लाल ज्वर, आदि न मालूम कितने नाम रक्खे गये हैं।

विजातीय-द्रव्य जब धीरे-धीरे बढ़ता जाता है तो उससे अनेक प्रकार की बीमारियाँ जैसे सिर दर्द, जुकाम, खाँसी दाँत में पीड़ा पैदा होती है। सर के बाल भी अल्प आयु में पक जाते हैं। कान से कम सुनाई देने लगता है और आँखों से कम दिखाई पड़ता है, पाचन-शक्ति का अभाव होता जाता है।

भोजन बिना पचे दस्त के रूप में बाहर निकल जाता है।

विजातीय-द्रव्य जब फेफड़े में बैठ जाता है तो फेफड़े खराब होने लगते हैं जब मनुष्य नाक से सांस न लेकर मुँह से सास लेता है, उस समय समझ लेना चाहिये कि उसके फेफड़े खराब होने लगे हैं। फेफड़े खराब होने की एक परीक्षा और है। जब मनुष्य सोने लगे तो वह किसी से यह देखने के लिए कह दे कि सोते समय उसका मुँह खुला तो नहीं रहता। यदि खुला रहे तो समझना फेफड़े की बीमारी शुरू हो गई है। जिनके फेफड़े मजबूत हैं वे सदैव नाक से सास लेते हैं, चाहे सोते हों और चाहे जागते हों।

उपरोक्त कथन से सिद्ध हो गया होगा कि सब रोगों की जड़ केवल विजातीय-द्रव्य है। यदि सब रोगों की जड़ एक ही है तो इन सब की चिकित्सा भी एक ही है। और वह चिकित्सा है प्राकृतिक-चिकित्सा। यदि हम शरीर के भीतर सड़ने वाले नवीन पदार्थ न जाने दें और यदि भीतरी विजातीय-द्रव्य को निकाल दें, तो फिर हम रोगी नहीं हो सकते। हम कम से कम १०० वर्ष तो अवश्य ही जी सकते हैं।

नवीन विजातीय-द्रव्य की उत्पत्ति रोकने के लिये प्राकृतिक आहार करना अत्यन्त आवश्यक है। भोजन जितने सादे ढङ्ग से पकाया जाय, उतना ही जल्द पचेगा। उसमें मसाले डालने की आवश्यकता नहीं है। रबड़ी, मलाई, मालपुआ आदि गरिष्ट भोजन का सर्वथा त्याग करना चाहिए। फलों का सेवन अधिक करना चाहिये। जिस ऋतु में जहाँ जो उत्पन्न हो वे वहाँ के लिये सवाराम हैं। दूध कच्चा पीना चाहिये। उबालने से उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है।

भोजन कम करना चाहिये। ठूँस-ठूँस करके खाने से मेदा कमजोर हो जाता है। भोजन को खूब कुचल-कुचल कर खाना

चाहिये। जिसमें क्षार अच्छी तरह मिल जाय। भोजन की यदि यह व्यवस्था रक्खी जायगी तो नवीन विजातीय-द्रव्य शरीर में बनेगा।

अब रही विजातीय-द्रव्य के निकालने की बात, जो भीतर भरा हुआ है। विजातीय द्रव्य निकालने के शरीर में चार मार्ग हैं फेफड़े, त्वचा, मूत्रेन्द्रिय और गुदा।

फेफड़, अच्छी हवा द्वारा खून को साफ करते रहते हैं और उसकी गन्दगी बाहर निकालते हैं। अवश्य जरूरी है कि बाहर से साफ हवा नाक द्वारा फेफड़ों में जाय। यह तभी हो सकता है जब मनुष्य स्वच्छ वायु में रहे और स्वच्छ वायु में घूमे और व्यायाम करे। जिस घर में हवा न आती हो, जिस घर में रोशनी न आती हो, उस घर में नहीं रहना चाहिये।

त्वचा में लाखों छिद्र हैं, जिनसे भीतर का मल बाहर निकला करता है। मल मल कर स्नान करने से त्वचा साफ रहता है। रोज सारे शरीर का स्नान न करना एक बुरी आदत है और बीमारी को बुलाना है, यदि त्वचा विजातीय-द्रव्य की अधिकता से ठंढी रहती हो तो शरीर पर भाप लेना चाहिये जिससे छिद्र खुल जायेंगे और पसीने के रूप में विजातीय द्रव्य बाहर निकल जायगा।

मूत्रेन्द्रिय का सम्बन्ध गुरदे से है। गुरदे में पेशाब बनता है और वह ब्लैडर और लिङ्गेन्द्रिय द्वारा बाहर निकलता है। बड़ी अँतड़ियों से पाखाना बाहर जाता है। विजातीय-द्रव्य गुरदे और बड़ा अँतड़ियों में प्रायः इकट्ठा होता है। इससे विशेष कर मूत्रेन्द्रिय में कुछ कभी-कभी जलन पैदा होती है। गुरदे और पेड़ का विजातीय द्रव्य उदर स्नान या मेहन स्नान से दूर होता है (विधि आगे देखिये) ये स्नान जमे हुये मल को शीघ्र ढीला करके बाहर निकाल फेंकते हैं।

इन स्नानों का फल तत्काल दिखलाई पड़ता है। पेट की सफाई हो जाती है और भूख खूब लगती है। यदि मल अधिक हो तो दिन में तीन बार आवश्यकतानुसार ये स्नान लिये जा सकते हैं। कितने समय में सञ्चित मल निकल जायगा, इसका अनुमान करना कठिन है। कभी कभी तो दो वर्ष तक लगातार चिकित्सा करनी पड़ती है। एक हमारे मित्र थे, वे इतने मोटे थे कि उन्होंने अपने बैठने के लिये एक खास कुरसी बनवाई थी। मैं जब स्कूल में पढ़ता था, तब उनके पास आया जाता था। वे आनरेरी मजिस्ट्रेट भी थे। उन्होंने शरीर हल्का करने के लिये बहुत-सी दवायें खाईं, किन्तु किसी से कुछ लाभ न हुआ। अन्त में उन्होंने जल चिकित्सा की शरण ली। उन्हें दो वर्ष तक जल चिकित्सा करनी पड़ी, जिनसे वे बिल्कुल स्वस्थ हो गये और उनका शरीर बिल्कुल पतला हो गया। जब मैं उनसे फिर मिला तो उन्होंने मुझे अपने पहले के कोट पहिन कर दिखलाये जो ओवर कोट की तरह मालूम होते थे। कहने का तात्पर्य यह कि विजातीय द्रव्य की तादाद पर ही अधिक या कम समय तक स्नान करने की अवधि बाँधी जा सकती है। जो लोग जन्म के रोगी हैं, उन्हें रोग से मुक्त होने के लिये अधिक समय तक जल चिकित्सा करनी पड़ती है।

उदर-स्नान और मेहन-स्नान के बाद गरमी लाने की आवश्यकता पड़ती है। बड़े लोग तो हवा में टहल कर गरमी प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु छोटे-छोटे बच्चे कैसे गरमी लावें। उन्हें चाहिए कि वे माता की छाती से चिपट जायें। उससे उनको गरमी पूरा तरह से मिल जायगी। उनको गरमी लाने का यही एक स्वाभाविक ढंग है।

इस प्रकार जब शरीर के भीतर नवीन विजातीय-द्रव्य न जायगा और भीतर का सञ्चित मल जल-चिकित्सा द्वारा बाहर

निकल जायगा तो मनुष्य पूर्ण स्वस्थ हो जायगा और उसका जीवन सुख मे व्यतीत होगा।

७—औषधियों से हानियाँ

आजकल भारतवर्ष में डाक्टरों और वैद्यों की संख्या क्रमश बढ़ रही है। बात तो यह होनी चाहिए थी कि रोगी की संख्या घटती, किन्तु शोक इस बात का है कि डाक्टरों और वैद्यों की वृद्धि के साथ रोगियों की सख्या भी दिन ब दिन बढ़ रही है।

लोग समझते हैं कि कोई रोग हुआ, झट दवा खालो, वह भग दा जायगा। उनका यह भारी भ्रम है। वास्तव में औषधियाँ विष हैं और शरीर के भीतर पहुँच कर वे विष उत्पन्न करती हैं। डाक्टर ट्रास का मत है कि सब प्रकार की औषधियाँ शरीर को हानि पहुँचाती हैं। औषधियों से वास्तव में रोग और बढ़ जाता है, घटता नहीं।

मान लीजिये कि आपके हाथ में दर्द है, डाक्टर उस पर इन्जेक्शन लगाता है, वह रोग भीतर दब जाता है और समय पाकर वह दूसरा रोग हाथ के दर्द से भी भीषण उत्पन्न करता है। विजातीय-द्रव्य का दबाना कहाँ तक उचित है। वह तो और भी अनर्थ पैदा करेगा। पीड़ा वास्तव में तो केवल लक्षण है वह असली चीज नहीं है।

लोगों का कहना है कि जो औषधियाँ खिलाई जाती हैं वे दस्त और कै कराकर शरीर के विकार को दूर कर देती हैं। यह ढंग प्राकृतिक न होने से निन्दनीय है। जो काम औषधियों से कराने का बहाना किया जाता है, वह पसीने और जल चिकित्सा के स्नानों द्वारा प्राकृतिक ढंग से ऐसे ही निकाला जा सकता है। उसके लिये फिर औषधियों की क्या आवश्यकता। मेरी समझ में औषधियाँ विकारों को हरगिज नहीं निकालतीं।

प्रकृति स्वयं उनको शरीर के हित के लिये निकालती रहती है।

बहुत से लोग ऐसे ही बिना रोग के औषधियों के खाने के अभ्यासी होते हैं। शक्ति-वर्द्धक अवलेह; शक्ति-वर्द्धक चूर्ण खाते हैं, ताकि मोटे और स्वस्थ हो जायँ। कुछ लोग तो भूख को बढ़ाने के लिए अफीम, मदिरा और माँस का सेवन करते हैं। ये सब वस्तुएँ कामोत्तेजना उत्पन्न करती हैं और मनुष्य को विषय की ओर अधिक प्रवृत्त करती हैं। इन चीजों का सेवन करने वाले का चित्त और शरीर हमेशा चञ्चल रहता है। उन्हें स्वास्थ्य का सुख कभी मिल नहीं सकता।

अमीरों के दरबार में एक न एक वैद्य जी या डाक्टर साहब की पहुँच जरूर हो जाती है। भइया को जरा-सी सर की पीड़ा हुई कि डाक्टर साहब कोइ मालिश की चीज लेकर दौड़े या वैद्य जी चट कोइ तेल लेकर सर में मलने लगते हैं। वे ऐसे ऐसे अमीरों का जीवन अपनी दवाइयों पर चलाते रहते हैं। ऐसी परिस्थिति होने से प्रायः भइया जी को कभी जुकाम होता है, कभी कब्ज हो जाता है और कभी बुखार हो जाता है।

दरबारी डाक्टर या वैद्य उनके भोजन की बढ़िया से से बढ़िया व्यवस्था करते हैं और उसे दवाओं के सहारे पचाने का प्रयत्न करते हैं। आजकल हमारे धनी भाइयों के पैसे ऐसे ही महान-महान् पुरुषों में खर्च होते हैं। डाक्टर और वैद्यों को तो कोई फँसना चाहिये तो उनके चंगुल में कोई न कोइ धनी फँस ही जाता है।

इससे मनुष्य के नैतिक बल में कितना पतन मालूम होता है। जिस भारतवर्ष के रहनेवाले कितने जितेन्द्रिय होते थे, वहाँ के निवासी अब अपनी जिह्वा पर भी अपना अधिकार नहीं रख सकते। यह बात बतलाई जा चुकी है कि मनुष्य का भोजन यदि स्वाभाविक है, यदि उसका रहन-सहन स्वाभाविक

हो तो उसे कोई रोग नहीं उत्पन्न हो सकता। जिसने जिह्वा और जननेन्द्रिय को अपने वश में कर लिया, समझ लीजिये वह संसार के रोग को अपने वश में कर चुका।

डाक्टर जो दवा देते हैं वह कितनी कडुवी होती है। उसको देखकर तबीयत घबड़ाने लगती है। पीते-पीते वमन करने की नौबत आ जाती है। जो वस्तु पीने और सूँघने में खराब लगे ईश्वर जाने वह शरीर को लाभ पहुँचाती होगी या हानि।

मजे की बात एक और है। वह यह कि अँगरेजी दवाओं के लिये मूल्य भी अधिक देना पड़ता है। डाक्टर साहब एक लम्बा नुसखा लिख देते हैं, जिसमें एक रुपये से कम पैसे नहीं लगते। हर एक गरीब इतने पैसे नहीं खर्च कर सकते। देखिये हम अँगरेजी दवाओं से दोहरी हानि उठा रहे हैं। एक तो उसमें लाभ नहीं होता और दूसरे हमारे पैसे कितने अधिक खर्च होते हैं।

हमारी समझ में अमीर और गरीब सबके लिये जल चिकित्सा ही रामबाण औषधि है। अन्य जितने प्रकार की बनावटी दवाइयाँ हैं, ये शरीर के रोगों को दबाकर भविष्य के लिये उसका मार्ग और भी अधिक कठिन बना देती हैं। हम यहाँ कुछ डाक्टरों का मत औषधियों के विषय में देकर इस अध्याय को समाप्त करते हैं।

अमेरिका के डाक्टर क्लार्क कहते हैं—"चिकित्सकों ने रागियों की लाभ पहुँचाने की धुन में उलटे बहुत कुछ हानि पहुँचाई है। उन्होंने हजारा ऐसे रोगियों के प्राण लिये हैं जो यदि प्रकृति पर छोड़ दिये जाते तो अवश्य नीरोग हो जाते। जिन्हें हम औषधि समझते हैं, वे वास्तव में विष हैं और उनकी प्रत्येक मात्रा से रोगी का बल घटता है।"

डा० भालोरी का मत है कि "रोगों को नाश करने में सब से अधिक महायता उन्हीं लोगों से मिली है, जिन्होंने किसी डाक्टरी कालेज की कोई परीक्षा नहीं दी है और न कोई डिप्लोमा पाया है।"

डाक्टर होम्स कहते हैं—"औषधियाँ आदि तैयार करने के लिये द्रव्य निकालकर व्यर्थ खानें खाली की जाती हैं, वनस्पतियों का सत्यानाश किया जाता है और साँपों के ज़हर निकाले जाते हैं। अगर सब औषधियाँ समुद्र में फेंक दी जातीं तो मनुष्य जाति का बड़ा उपकार होता।"

डाक्टर अयारनकी कहते हैं—"चिकित्सकों की संख्या बढ़ने के साथ ही साथ रोगों की संख्या भी उसी शान से बढ़ती जाती है।"

डाक्टर फूगन का सिद्धान्त है, कि औषधियों पर जिसका जितना विश्वास हो उसे उतना ही अज्ञानी समझना चाहिये।

८—बच्चों की देख रेख

इस समय जो हमारी शारीरिक दशा गिरी हुई है उसका मुख्य कारण यह है कि हम लड़कपन से बच्चों की देख रेख जैसा करना चाहिये, वैसा नहीं करते। हमारे घर की स्त्रियाँ जो अधिकतर मूर्ख हैं तो फिर बच्चों की देख-रेख कौन करे, माता मारे लाड़-प्यार के दिन भर छोटे बच्चे को खिलाना ही अपना कर्तव्य समझती है।

बच्चे का खाना प्रातःकाल से शुरू होता है। उठते उठते गाय का गुनगुना दूध भर पेट पिलाया जाता है। यदि बच्चा रोता है तो दिन भर में ४, ७ मरतबा खूब पेट भर भर कर उसको दूध पिलाया जाता है। रात को भी जब बच्चा किसी कारण से रोता है तो माता यही समझती है कि वह मारे भूख के रो रहा है। इस

वास्ते रात को भी वासी दूध ठूँस-ठूँसकर पिलाया जाता है।

जो लड़के कुछ बड़े हैं और पैर के बल किसी प्रकार चल लेते हैं,उन्हें नाना प्रकार के अप्राकृतिक भोजन कराये जाते हैं। सब पकवान,मिठाई,नमकीन आदि कड़ो २ चीजों का जलपान कराया जाता है। ६,१० बजे रोटी दाल,भात,तरकारी भर पट खिलायी जाती है। इसके बाद सायंकाल तक जब लड़के किसी को खाते हुए देखते हैं तो उसी के साथ खाने बैठ जाते हैं। इस प्रकार दिन रात में न मालूम कितने बार लड़के खिलाये जाते हैं। जितने लड़के खाते हैं उतने ही बार वे पाखाने भी जाते हैं।

परिणाम इसका यह होता है कि हमारे देश में लड़कपन में बच्चा को अनेक बीमारियों का सामना करना पड़ता है। आज किसी बच्चे को पाखाने की बीमारी हुई है, तो कल मुँह से दूध गिराना है, यदि किसी बच्चे को कॅवल होता है तो दूसरे दिन किसी बच्चे की पसली चलती हुई दिखलाई पड़ती है। कॅवल, पसली का चलना, दूध गिराना, हरा-हरा पाखाना आना, ज्वर का रहना आदि ऐसी बीमारियाँ हैं जो हमारे बच्चों का पिण्ड नहीं छोड़तीं।

वास्तव में देखा जाय तो बच्चों को बीमारियाँ इसी वास्ते होती हैं कि उनको अप्राकृतिक भोजन आवश्यकता से अधिक कराया जाता है। मूर्ख माता समझती है कि उनके पीछे भूत प्रेत लगा हुआ है। झाड़ने-फूँकने वाले बुलाये जाते हैं और नाना प्रकार के ऐसे ऐसे करामात करवाये जाते हैं, किन्तु बच्चा अन्त में मर जाता है। इस मूर्खता का भी कुछ ठिकाना है। जहाँ बच्चों को डाक्टरों को दिखलाना चाहिये वहाँ उनकी उपयुक्त चिकित्सा न करके हम झाड़-फूँक वालों के हाथ में अन्धविश्वास के कारण डाल देते हैं और अन्त में उस बच्चे से हाथ धो बैठते हैं।

ऐसी प्रथा हिन्दुस्तान में ही दिखलाई पड़ती है। यही कारण

है कि छोटे छोटे बच्चों के मरने की संख्या और देशों की अपेक्षा हिन्दुस्तान में अधिक है। आपने देखा होगा कि एक अंगरेज के बच्चों की लड़कपन से कितनी देख-रेख की जाती है। उसकी माता पढ़ी लिखी होती है। बच्चे को ठीक समय में भोजन दिया जाता है, और उनको साफ और सुथरा रक्खा जाता है। प्रात काल और सायंकाल में खुली हवा में घुमाये जाते हैं और घर में भी खुली हवा में रक्खे और सुलाये जाते हैं।

हमारे घर की स्त्रियाँ बच्चों को केवल अधिक खिलाती नहीं हैं बल्कि उनको बन्द कोठरी में रखती हैं, खासकर सरदी के दिनों में ताकि उनको ठंढ न लगने पावे। ताजी हवा बच्चों के पास जाने नहीं पाती। जहाँ माताओं की मूर्खता के कारण बच्चों के स्वास्थ्य को खराब करने वाले इतने कारण मौजूद हैं वहाँ बच्चे यदि अधिक संख्या में मरते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

लुइ कूने ने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम Rearing of Children अर्थात् बच्चों का पालन है। यदि उनके आदेशानुसार बाल्यावस्था से बच्चों का पोषण किया जाय तो बच्चे स्वस्थ और दीर्घजीवी हो सकते हैं। उन हजारों बच्चों के प्राण बच सकते हैं जो थोड़ी ही अवस्था के कराल काल के गाल में पड़ते हैं। उसी का यहाँ पर हम सार दे रहे हैं।

शुरू में बच्चों का स्वाभाविक भोजन माँ का दूध है। हम प्राय देखते हैं कि जिस बच्चे को माँ का दूध पीने को नहीं मिलता वह प्राय मर जाता है। माँ से उतर कर दूध धाय का होता है, सभ्य घरों में माँ अपने बच्चे को दूध बहुत कम पिलाती है, दूध पिलाने का काम प्राय धायों के सुपुर्द किया जाता है। धाय यदि स्वस्थ है तो कोई बात नहीं, नहीं तो प्राय बच्चे को हानि पहुँच जाती है। अतएव जहाँ धाय द्वारा बच्चों को दूध

पिलाया जाता है, वहाँ धायों को स्वस्थ रखना अत्यन्त आव श्यक है। ऐसा होते हुए भी माता के दूध की कुछ और ही बात है। उसमें बच्चे के लिए विशेष शक्ति है। माता को ही सब प्रकार से बच्चे के लिए स्वस्थ रहना चाहिए।

प्राय: लोग माता के दूध से सन्तुष्ट नहीं रहते। वे बच्चे को मोटा करने के लिए नाना प्रकार के बोतलों के दूध को प्रयोग में लाते हैं। विज्ञापनदाता विज्ञापनों में नाना प्रकार से इस दूध की प्रशंसा करते हैं और जनता उनके चंगुल में फँसा जाती है। इससे बच्चों का पेट कमजोर हो जाता है और वे रोगी हो जाते हैं।

अतएव इस प्रकार के बने हुये बाजारू दूध बच्चों को कभी भी न देना चाहिये। यदि माता क दूध न होता हो या कम होता हो तो गाय का कच्चा दूध दिया जा सकता है। उबाला हुआ गाय का दूध भारी होता है और बच्चों को हर प्रकार से हानि पहुँचाता है। वह देर में हजम होता है और इसके अलावा दूध की पोषण शक्ति उबालने से नष्ट हो जाती है। डाक्टर कहते हैं कि कच्चे दूध में जीवाणु पड़ जाते हैं जो रोग उत्पन्न करते हैं, यदि बच्चे का पेट निरोग है तो जीवा णुओं से डरने की जरूरत नहीं है। वे पेट में आते ही मरकर सब हजम हो जाते हैं। यदि लोग कच्चे दूध से डरते हों तो थोड़ा सा उसे गुनगुना कर लें, किन्तु उबालें नहीं।

वास्तव में गाय का ताजा दूध देना चाहिए और उसमें थोड़ा-सा पानी मिला लेना चाहिये। यह देख लिया जाय कि जिस गाय का दूध दिया जा रहा है वह तन्दुरुस्त है या नहीं, जो गायें खूंटे में २४ घंटे बँधी रहती हैं वे स्वस्थ नहीं हो सकतीं। जो दिन में चरने जाती हैं और जिन्हें घास पात अधिक खाने को दिया जाता है, वे स्वस्थ होती हैं। यदि गाय स्वस्थ न हुई

तो उसके दूध से बच्चे को हानि पहुँचती है। हर समय गाय का दूध ताजा नहीं मिल सकता, इसलिए जब दूध बच्चे को पीने को दिया जाय तब जरा गुनगुना कर लिया जाय तो हानि नहीं है, किन्तु उबाला या औटाया दूध बच्चों को कदापि न देना चाहिए। उबाले हुए दूध से बच्चों के हाथ-पैर मोटे पड़ जाते हैं और उनके पेट निकल आते हैं।

जब बच्चा जरा बड़ा हो तो उसे चावल या जौ का माँड़ देना चाहिये। दूध या माँड़ में चीनी नहीं मिलाना चाहिए। मीठे से दूध का स्वाद बढ़ जाता है जिससे आवश्यकता से अधिक बच्चा पीने लगता है, नकली रीति से दूध पिलाने में यही तो भारी हानि है। इसके अतिरिक्त चीनी स्वयं पेट के लिये अच्छी वस्तु नहीं है। ईश्वर ने जितनी चीनी की आवश्यकता समझी है उतनी चीनी उसने हमारे आहार पदार्थों में स्वाभाविक रूप से ही मिला दी है।

बच्चे को आवश्यकता से अधिक न खिलाना चाहिए। कम खान में इतनी हानि नहीं है, जितनी अधिक खान में। उसके खान का समय बाँध देना चाहिये। छोटे बच्चों को प्रायः भूख जल्दी जल्दी लगती है, अतएव उसकी रुचि देखकर और धीरे में जब यह अच्छी तरह देख लिया जाय कि इसे भूख लगी है, तो उसे भोजन देना चाहिये।

बच्चा जब कुछ बड़ा हो जाय और उसके दाँत निकल आवें तो दूध के अलावा उसे हिन्दुस्तानी ढङ्ग से सिंकी हुई गेहूँ के आटे की रोटी और दलिया देना चाहिए। रोटी को माँ पहले स्वयं चबा ले तब बच्चे के मुँह में डाले। यह प्रथा हिन्दुस्तानियों के लिए घिनौनी मालूम होती है, किन्तु इससे बच्चे को बड़ा लाभ पहुँचता है। बच्चा रोटी को अच्छी तरह चबा

नहीं सकता, इसलिए सड़ी रोटी का टुकड़ा उसके पेट में जाने से उसे बदहज़मी होने का सन्देह है।

ताजा फल और एक टुकड़ा रोटी शुरू में लड़के के लिए काफी है, रोटी में घी नहीं चुपड़ना चाहिये। लड़कपन से ही बच्चों को समझाते रहना चाहिये कि इससे बढ़कर तुम्हारे लिए दूसरा भोजन नहीं है। इसके पश्चात् उन्हें थोड़ा-सा भात, थोड़ी सी दाल और थोड़ी सी तरकारी खाने को दीजिये, भात का माँड़ न निकालना चाहिये और दाल छिलकेदार होनी चाहिये। पानी भी उन्हें स्वाभाविक जितना ठंढा मिल सके, उतना ठंढा देना चाहिये। उसे उबालकर नहीं देना चाहिये।

बच्चों को स्वस्थ रखने के लिए यह आवश्यक है कि उनके कपड़ों पर भी ध्यान रक्खा जाय। वे इतने ढीले और हवादार हों कि बच्चों को किसी प्रकार की तकलीफ न हो। गर्मी के दिनों में उन्हें एक पतला-सा कुरता पहनना चाहिये और जहाँ तक हो नंगे पैर रखना चाहिये। गर्मी में उन्हें मोजे और पतलून पहनने की जरूरत नहीं है। बच्चों के सर पर कंटोप बाँधने की आवश्यकता नहीं है। इससे उनके स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है।

बच्चों को हवादार खुले कमरे में सुलाना चाहिये। उनके मुँह बन्द न करना चाहिये। उनको हर एक ऋतु में ओढ़ाना चाहिये, उनको जितना पसीना आयेगा उतना ही फायदेमंद है। बहुत-सी मातायें कमरे के सब दरवाज़े को जाड़े में बन्द कर देती हैं, इस भय से कि बच्चे को सरदी लग जायगी। ऐसा समझना मूर्खता है। बन्द कमरे में बच्चे को कदापि न सुलाना चाहिये।

अब आप लोग उन बालकों की ओर ध्यान दीजिये जो पढ़ने के लिए स्कूल जाते हैं। इन बच्चों के भोजन में हम बड़ी लापरवाही करते हैं। बहुत से बच्चे बासी पराठे या पूड़ी, अचार या किसी दूसरी चटपटी चीज के साथ खाकर स्कूल

खाते हैं। यहाँ जब छुट्टी का घंटा बजता है या बीच ही में स्कूल के बाहर निकलकर चटपटे, मलाई का बर्फ आदि अन्याय पदार्थ खाते हैं। सायंकाल जब स्कूल से वे घर आते हैं तो पेट भर खाते हैं और रात को ८ बजे डटकर फिर भोजन करते हैं परिणाम इसका यह होता है कि अधिकांश विद्यार्थी एक न एक रोग से पीड़ित रहते हैं। कम से कम उनकी तबियत दिन भर भारी तो जरूर रहती है और कभी कभी दर्जे में मेद के बोझ से ऊँघते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

जिन माता पिता ने बच्चे को पैदा किया है उन्हें उसकी देख-रेख भी पूरी तरह से करना चाहिये। प्रातःकाल स्कूल जब वे आयें तो उन्हें चोकर मिले आटे की रोटी, दाल, भात और तरकारी खाने को दें, सब काम छोड़कर ताजा भोजन उनके लिए बनाया जाय। बच्चों को चटपट के लिये पैसे न दिये जायँ। स्कूलों की ओर से संयुक्त प्रान्त के स्कूलों में चने के जलपान का अब प्रबन्ध हो गया है। १ बजे के लगभग उनको मिलता है। यह चने का जलपान उनके लिए काफी है।

चार बजे जब बच्चे स्कूल से घर वापस आते हैं तो उनको कुछ भी जलपान न दिया जाय और यदि देने की आवश्यकता ही पड़े तो सामयिक फल खाने को दिये जायँ। ७ बजे, तब उनको वही बे छने आटे की रोटी और तरकारी का भोजन कराया जाय। पूड़ी कचौड़ी खिलाना हानिकारक है, ताजा गाय का कच्चा दूध भी दिया जा सकता है। हमेशा इस बात पर ध्यान रक्खा जाय कि बच्चों को जल्दी जल्दी न खिलाया जाय और जो भोजन खाने को दिया जाय वह जल्द पचनेवाला हो।

लड़कों को स्कूल में जब प्यास लगे तो ठंडा पानी ही पिलाया जाय। सोडावाटर, आइस क्रीम, लेमोनेड आदि पीने की प्रथा बुरी है। ये सब स्वाभाविक पेय पदार्थ नहीं हैं। बरफ

भी स्वाभाविक न होने के कारण त्याज्य समझना चाहिये।

ऐसा होते हुए भी लड़कों को आदतें घर में ही पड़ती हैं। वे अपने माता पिता की नकल करके अपना आचरण निर्माण करते हैं। यदि पिता घर में चुरुट पीते हैं तो उन्हें देखकर बचा भी चुरुट पीने लगता है। यदि माता-पिता आठ बार घरमें बिना सोचे समझे भोजन करते हैं तो बचा भी देखा-देखी आठ बार भोजन करता है। खाने-पीने का, बातें करने का, रहन-सहन का ऊँचा आदर्श यदि घर के लोग रक्खें तो बच्चे को यह कहने की आवश्यकता न पड़ेगी कि बेटा, तुम्हें इस प्रकार संसार में रहना चाहिये। एक प्रत्यक्ष उदाहरण सौ मौखिक बातों से कहीं अच्छा है।

स्कूल जाने वाले लड़कों में एक बात सबसे खराब यह पाई जाती है कि बहुत से लड़के रोज स्नान नहीं करते। वे मुँह में जरा सा तेल लगा लेते हैं और बालों में कंघी कर लेते हैं। देखनेवाले को मालूम होता है कि वे स्नान करके आये हैं किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं रहती। जाड़े के दिनों में शायद १५ दिनों में वे स्नान करते होंगे। जो लाभ अच्छी हवा से फेफड़ों को पहुँचता है वही लाभ स्नान करने से त्वचा एवं शरीर को पहुँचता है। आपने देखा होगा कि जब आप स्नान करते हैं तो शरीर भर में कैसी फुर्ती एकदम पैदा हो जाती है और चित्त एक दम किस प्रकार प्रसन्न हो जाता है।

दूसरी खराब आदत जो बच्चों में पाई जाती है वह व्यायाम का अभाव है। बच्चों के लिये व्यायाम करना उतना ही आवश्यक है जितना उनके लिये भोजन करना। सबसे अच्छा व्यायाम प्रातःकाल खुली हवा में टहलना है। प्रत्येक बच्चे को प्रातःकाल उठकर शौचादि से निवृत्त होकर ४, ५ मील अवश्य टहल आना चाहिये और फिर उस के बाद अपने दैनिक काम में लगना चाहिये।

Child is the father of the man, यानी जो आज

बच्चे हैं येही आगे चलकर देश के होनहार नागरिक बनते हैं। यदि स्वास्थ्यदायक भोजन की ओर बाल्यकाल से ही उनकी प्रवृत्ति लगाई जाय, यदि रहन-सहन का ध्यान बाल्यकाल से दिया जाय तो देश का देश स्वस्थ हो जाय और आगे चलकर उनके रोगों को दूर करने के लिये हाय-तोबा न करना पड़े।

६—जल चिकित्सा के स्नान

जल-चिकित्सा में जिन स्नानों से रोग दूर किये जाते हैं उनके विवरण यहाँ दिये जाते हैं।

स्टीम बाथ (वाष्पस्नान)

स्टीम बाथ कई प्रकार से लिये जाते हैं, त्वचा अपना काम सुचारु से करे इसके लिये यह सबसे बढ़िया स्नान है। जो स्वस्थ रहना चाहते हैं उनके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनकी त्वचा ठीक-ठीक काम करे।

सारे शरीर का स्टीम बाथ—लुइ कूने साहब ने शरीर में स्टीम बाथ लेने के लिये एक विशेष यन्त्र तैयार किया है जिसका चित्र दूसरी ओर दिया है। इस यन्त्र से यह लाभ है कि इससे चाहे आप सारे शरीर में स्टीम बाथ ले लीजिये और चाहे शरीर के किसी भाग में ले लीजिए क्योंकि यह छोटा बड़ा किया जा सकता है।

चित्र [ख] की तरह यंत्र को रखकर तीन या चार पानी से भरे बरतन आग पर चढ़ा दीजिए, जब पानी खौलने लगे तो रोगी को पीठ के बल बिलकुल नग्न यंत्र पर लिटा दीजिये और उसको कम्बल से इस प्रकार ढकिये कि यह चारों ओर जमीन से सटकता रहे जिससे भाप बाहर न निकलने पाय। शुरू में सिर भी ढक लेना चाहिये। फिर पानी से खौलते हुए दो बर्तन कम्बल उठाकर नीचे रखिये, एक पैर के नीचे और

चित्र (ख)

चित्र (ख)
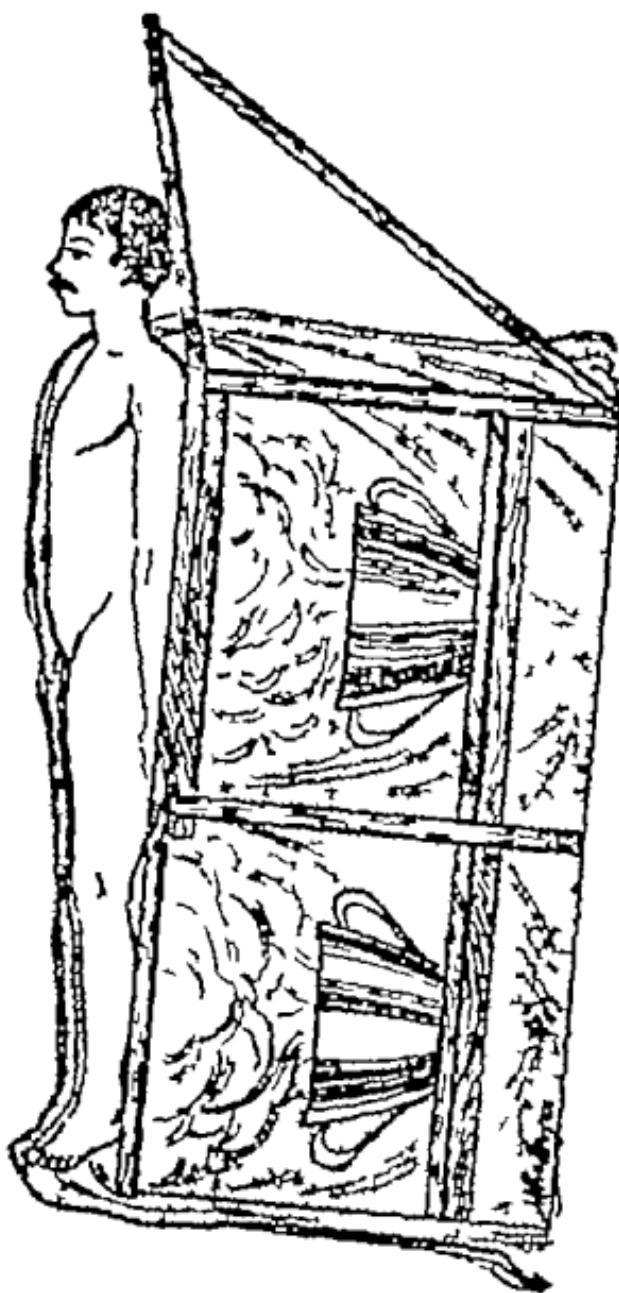
दूसरा पीठ के नीचे। बच्चों के लिए केवल एक बरतन का रखना काफी है। ज्योंही बरतनों से भाफ कम निकलने लगे तो उनको हटाकर आग पर चढ़ा दीजिये और आग पर रखे हुए दो बरतन उनके स्थान पर रखिये। इसी प्रकार काफी भाफ देने के लिए बरतनों को बदलते रहिये।

१० या १५ मिनट के बाद रोगी को उलट जाना चाहिये ताकि भाफ पेड़ू और छाती में विशेष रूप में पहुँचने लगे। पसीना यदि अभी तक न आया होगा तो अब जोर से निकलने लगेगा। बच्चों के लिए बरतनों को बार-बार बदलना आवश्यक है। जिन लोगों को जल्दी पसीना नहीं आता उन्हें अपना सिर ढके रहना चाहिये। जिन हिस्सों में विजातीय-द्रव्य अधिक संचित है उनमें पसीना देर में निकलता है। रोगी की भी यही इच्छा होती है कि वहाँ अधिक गरमी पहुँचाई जाय। उसकी यह इच्छा पूर्ण होनी चाहिये। स्टीम बाथ आवश्यकतानुसार १५ मिनट से आध घण्टे तक लिया जा सकता है।

कमजोर पुरुषों का अथवा जिनकी दशा भयङ्कर है और पागल आदि उन्माद रोगियों को स्टीम बाथ कभी नहीं देना चाहिए। जिन लोगों का स्वभावतः पसीना आता है उन्हें भी स्टीम बाथ लेने की जरूरत नहीं है। एक सप्ताह में दो बार से अधिक स्टीम बाथ नहीं लेना चाहिये।

स्टीम बाथ लेकर ठंडे पानी का (६८, ८१ फैरन हाइट) हिप बाथ शरीर को ठंडा करने के लिए लेना चाहिये। हिप बाथ के शुरू में या अन्त में पेड़ू के अतिरिक्त शरीर के अन्य भागों को भी ठंडा करने के लिए ठंडे पानी से धो डालना चाहिए। इस रीति से पसीना आने पर कोई भीतरी उत्तेजना नहीं होती। गरमी के बाद ठंडे पानी के स्नान से बिलकुल न डरना चाहिये। लोहे का स्टीम बनाने के लिए पहले उसे आग

में लाल करते हैं और फिर उसे शीतल जल में बुझाते हैं। इसी प्रकार स्टीम बाथ के बाद जब मनुष्य का शरीर भी ठंडा किया जाता है तो यह मजबूत बनता है।

स्टीम बाथ लेकर शरीर को इस प्रकार गरम करना चाहिए कि कुछ पसीना आ जाये। ताकतवर पुरुष खुली हवा में टहलें अथवा व्यायाम करें और कमजोर पुरुषों को गरम कपड़े ओढ़ कर चारपाई पर लेट जाना चाहिये।

स्टीम बाथ बेंत की कुर्सी में बैठकर लिया जा सकता है। रोगी उसमें बैठ जाय और चारों ओर अपने को कम्बल से ढक ले। कुर्सी के नीचे एक खौलते हुए पानी का बरतन रक्खा जाय और रोगी के पैर एक कम खौलते हुए दूसरे बरतन के ऊपर दो पतली पतली लकड़ियां रखकर उसी के ऊपर रख दिए जायँ।

(आराम कुर्सी या मूढ़ों में एक छोटी खटिया से भी स्टीम बाथ लिया जा सकता है किन्तु कुछ कूने साहब के यंत्र में स्टीम बाथ लेते समय सुविधा अधिक होती है।)

पेट का स्टीम बाथ—यह स्टीम बाथ कठिन से कठिन उदर रोगों में लिया जाता है। इसके लेने का ढंग चित्र (ब) से स्पष्ट हो जाता है। इसके बाद हिप बाथ लेना अत्यन्त आवश्यक है। स्त्री सम्बन्धी रोगों में हिप बाथ की जगह सिट्ज बाथ लेना चाहिये। इस स्टीम बाथ के लेने का ढङ्ग वही है जो पूरे शरीर के स्टीम बाथ लेने का है।

गरदन और सर का स्टीम बाथ—चित्र (स) से यह स्टीम बाथ स्पष्ट हो जाता है। भाप का बरतन बेंच के ऊपर एक तख्त पर रक्खा जाता है और सर और गर्दन में उस समय तक भाप दी जाती है जब तक उनमें पसीना न निकलने लगे। पसीना निकलते ही दर्द बन्द हो जायगा। दांत की पीड़ा में भी विशेष रूप से देखने में आता है। सर और छाती को यदि भ

गरम हों तो ठंडे पानी से धो डालना चाहिये और फौरन ही हिप बाथ या सिट्ज बाथ लेना चाहिये। यदि दर्द कुछ देर बाद फिर होने लगे तो गरदन का स्टीम ।। थ सारे शरीर का स्टीम बाथ बारी-बारी से लेना चाहिये। सारे शरीर के स्टीम बाथ में इस बात का ध्यान रहे कि पेडू में भी भाप दी जाय।

पृथक-पृथक अंग के स्टीम बाथ बड़े महत्व के होते हैं। उनसे लाभ जल्द पहुँचता है। कान के दर्द में, आँख की बीमारी में, नाक और गले की बीमारी में, दाँतों की पीड़ा में और फोड़े फुन्सी और भीतर मुँह वाले फोड़े में तो ये अचूक लाभदायक सिद्ध हुये हैं।

विशेष अंगों के स्टीम बाथ किसी विशेष यंत्रों की सहायता से भी दिये जा सकते हैं। पेडू का स्टीम बाथ साधारण कुर्सी में लिया जा सकता है। सर में स्टीम बाथ लेने के लिये एक छोटी सी चौकी से काम लिया जा सकता है, जिसके ऊपर खौलते हुए पानी का बरतन रक्खा जा सके।

धूप स्नान (सन बाथ)

धूप या सन बाथ उस दिन लिया जा सकता है जिस दिन सूर्य खूब चमक रहा हो और दिन में साधारण गरमी हो। उसके लेने की विधि इस प्रकार है। रोगी को बहुत पतला कपड़ा पहनकर चटाई या (ऊनी कम्बल पर) लेट रहना चाहिये, जहाँ धूप तो आती हो लेकिन हवा न लगती हो। जूते और मोजे एक दम न रहें। स्त्रियों को अपनी धोती उतार डालनी चाहिये। सर और चेहरे को बड़े-बड़े पत्तों द्वारा धूप से बचाना चाहिये। इसके लिए केले के पत्तों से अच्छा काम चल सकता है। पेडू को भी पत्तों से ढाँक रखना चाहिये। पत्ता न मिले तो गीले कपड़े से ढाँक दिया जाय।

धूप स्नान आध घण्टे से डेढ़ घंटे तक आवश्यकता के अनु-

सार लिया जा सकता है। यदि,किसी रोगी को तब भी पसीना न निकले तो उसे डेढ़ घंटे से भी अधिक धूप में लेटे रहना चाहिये। बहुत कड़ी धूप में बहुत देर तक सन बाथ लेना उचित नहीं है। सन बाथ लेते समय जिनके सर में दर्द होने लगे उन्हें पहले थोड़े ही समय तक सन बाथ लेना चाहिए। यह दशा विशेषकर उन रोगियों की होती है जिनको या तो पसीना आता ही नहीं और कभी आता भी है तो बड़ी कठिनाई से।

सन बाथ के बाद ढीले हुए विजातीय-द्रव्य को बाहर निकालने के लिये हिप बाथ या सिट्ज़ बाथ अत्यन्त आवश्यक है। जिन अत्यन्त बीमार रोगियों को ठंडे हिप बाथ या सिट्ज बाथ के पश्चात जल्दी गरमी नहीं आती उन्हें सर ढँककर धूप में गरमी लाने के लिये फिर बैठ जाना चाहिये या धूप में टहलना चाहिये। अधिक बीमार रोगियों के लिये सन बाथ कष्टप्रद है, इसलिये शुरू में न देना चाहिये।

सनबाथ लेने का सबसे बढ़िया समय १० से ३ बजे तक का है। यदि इच्छा हो तो दोपहर के भोजन के पश्चात सनबाथ लिया जा सकता है किन्तु भोजन के बाद या एक घंटे बाद लेना उत्तम है। क्योंकि भोजन पचाने के लिये शरीर को गरमी की जरूरत होती है और सनबाथ के पश्चात जो ठण्डे स्नान लिये जाते हैं उनसे गरमी कम होती है।

किसी विशेष अंग के सनबाथ

लुई कूने साहब ने गुमड़ियों में, बहते हुए घावों में, सूजन में, रसौली में, शरीर के भीतर किसी अवयव के फट जाने में और सब प्रकार के दर्द में सन बाथ का बड़ी सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। किसी विशेष अंग का सन बाथ उसी प्रकार लिया जाता है जिस प्रकार पूरे शरीर का सन बाथ। अंतर केवल इतना ही है जिस अंग पर सन बाथ लेना हो तो बस एक

दम नंगा कर दिया जाय और उस पर वो पत्ते रख दिए जाँय।

सन बाथ के विषय में साधारणतया यह कहा जा सकता है कि पानी और आहार के साथ सबसे उत्तम हमारा चिकित्सक सूर्य ही है। दूसरा कोई भी ऐसा मार्ग नहीं है जिससे हमको सूर्य के समान लाभ प्राप्त हो सके। पुराने रोगों के विजातीय-द्रव्य को ढीला करनेके लिए सन बाथ से बढ़कर कोई दूसरा लाभदायक सरल उपाय नहीं है। एक उदाहरण से यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जायगी। मिट्टी से सना हुआ कपड़ा यदि धूप में डाला जाय तो मिट्टी शीघ्र सूख जाती है, किन्तु यदि हम कपड़े को एक बार पानी में भिगोवें और बार बार धूप में रक्खें तो धूप मैल को थोड़ा बहुत खींच लेती है और कपड़ा साफ हो जाता है।

इस पृथ्वी पर जीव मात्र का जीवन धूप, पानी, हवा और मिट्टी के प्रभाव पर है जो एक-एक के बाद पड़ा करता है। पौधे और वृक्ष तभी उग सकते हैं, जब उनको धूप, पानी हवा और मिट्टी मिलती है। जीवन के ये साधन जब अलग हो जाते हैं तो पौधे और वृक्ष या तो छोटे-ही रह जाते हैं यह सूख जाते हैं। ऐसे ही हाल सब जीवधारियों और मनुष्य प्राणी का भी है। अभाग्य वश बहुत से लोग आवश्यकता से अधिक धूप और जल से परहेज करते हैं। ऐसी दशा में शरीर नाजुक हो जाता है और रोग को जल्द पकड़ता है। एक तन्दुरुस्त मनुष्य बिना किसी हानि के धूप सह सकता है। एक रोगी या कमजोर मनुष्य धूप से स्वभावतः बचता है क्योंकि इससे उसको बेचैनी मालूम होती है। शरीर के भीतर विजातीय-द्रव्य के ढीले पड़ने से यदि मल निकालन वाली इन्द्रियाँ कमजोर हैं तो सरदर्द, सुस्ती, थकावट और भारीपन मालूम होते हैं। यदि ये सब विकार उत्पन्न होने लगें तो समझ लेना चाहिये कि विजतीय-द्रव्य अपनी जगह से ढीला होकर निकलनेपर आया है। बिना हिप या सिट्ज बाथ लिये केवल

सन वाय से ही हमारा मनोरथ नहीं सिद्ध हो सकता। बल्कि जीवन-शक्ति बढ़ती है और उसे बढ़ाना हममें से प्रत्येक का उद्देश्य होना चाहिये। पौधे भी धूप और पानी के बारी-बारी असर से उगते हैं और उन्हें यदि अकेली धूप ही मिले तो वे जल्द सूख जाते हैं। प्रकृति में जिस प्रकार काम होता है जब हमें यह मालूम हो जाता है तो इस बात के समझने में हम कोई भी कठिनता नहीं रह जाती कि सन बाथ से उत्पन्न खराबियाँ ठण्डे स्नानों से किस प्रकार दूर हो जाती हैं। सन बाथ के साथ लुई कूने के ठण्डे स्नानों के करने से रोग बहुत ही शीघ्र अच्छे होते हैं।

कोई-कोई ख्याल करते होंगे कि धूप का प्रभाव ढके हुये शरीर के हिस्से की अपेक्षा नंगे शरीर के हिस्से पर अधिक होता होगा किन्तु उनका ऐसा ख्याल करना भूल है। प्रकृति की ओर ध्यान और ध्यान से इसका उत्तर मिल जाता है। अँगूरों की ओर देखिये। क्या अँगूर धूप से बचाने के लिये पत्तों की आड़ में नहीं हो जाते। जो पत्तियों से अच्छी तरह ढके रहते हैं वे मीठे होते हैं और अच्छी तरह पकते हैं, किन्तु जो खुले रहते हैं वे या तो खट्टे हो जाते हैं या उनकी वृद्धि मारी जाती है। शाहदाने के वृक्ष की भी यही दशा उस समय होती है जब फल तो पक जाते हैं, किन्तु पत्तियाँ कीड़े खा जाते हैं। ऐसी दशा में फल बिना पके ही सूख जाते हैं। यदि साया के लिये पत्तियाँ रहें तो यह दशा न हो। पकने के लिये हरेक फल को पत्तियों की आवश्यकता है। उपरोक्त उदाहरणों से यह बात भलीभाँति सिद्ध होती है कि सूर्य की परोक्ष और अपरोक्ष धूप का क्या प्रभाव होता है।

नंगे सर पर धूप का प्रभाव हानिकारक होता है और इससे नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं। यदि हम शरीर को कपड़े से ढक रहें तो पसीने के छेद अति शीघ्र खुल जाते हैं और उनमें से पसीना भी अति शीघ्र निकलने लगता है।

पसीना और भी अधिक उस समय निकलता है, जब हम उसमें ऐसी चीज रखते हैं जिसके भीतर पानी हो। ऐसा पानी ताजे और हरे पत्तों में हुआ करता है।

सूर्य की किरणों का प्रभाव काले कपड़ों में दूसरा होता है और सफेद कपड़ों में दूसरा। इसलिये यह बात विचारणीय है कि हम बाथ के समय सिले कपड़े पहिनें या हरे हरे पत्तों को काम में लावें। लुइ कूने का अनुभव है कि विजातीय-द्रव्य में हरे-हरे पत्तों से छनकर जो किरनें जाती हैं वे ही उसको और सब प्रकार के वस्त्रों से कहीं अधिक ढीली करती हैं। सन बाथ के साथ और दूसरे ठंढे स्नानों से पेड़ू में पड़ी हुई गुमड़ियों को, दमा को और गठिया को बड़ा लाभ हुआ है।

हिप बाथ या उदर स्नान—इसके लेने की विधि इस प्रकार है, जैसा चित्र नं० ६ में है। एक टब में ८८ से ६८° फारेन हाइट तापमान का जल इस प्रकार भरिये कि यह ऊपर नाभी तक रहे और नीचे जाँघों तक। स्नान करने वाला फिर उसमें बैठ कर एक मोट गीले अँगवछे से नाभी से नीचे की तरफ और एक कोख से दूसरी कोख तक शरीर को रगड़े जब तक शरीर में ठण्ढक न मालूम होने लगे।

प्रथम प्रथम यह स्नान ५ से १० मिनट तक लेना चाहिये। इसके बाद अभ्यास पड़ने पर समय बढ़ा देना चाहिये। कमजोर मनुष्यों और बच्चों के लिये थोड़े ही मिनटों का स्नान काफी है। स्नान करते समय इस बात पर पूरा ध्यान रक्खा जाय कि पैर और शरीर के ऊपरी धड़ पर पानी न पड़ने पाये। पैरों में कम्बल डाल लिया जाय तो और भी अच्छा है। स्नान के बाद व्यायाम द्वारा शरीर को गरम करना आवश्यक है। जो रोगी अत्यन्त निर्बल हैं या सख्त बीमार हैं, उन्हें गरमी लाने के लिये खूब ओढ़कर चारपाई पर लेट रहना चाहिये। यदि गरमी इस

सून बाथ से ही हमारा मनोरथ नहीं सिद्ध हो सकता। जल से जीवन-शक्ति बढ़ती है और उसे बढ़ाना हममें से प्रत्येकका उद्देश होना चाहिये। पौधे भी धूप और पानी के बारी-बारी असर से उगते हैं और उन्हें यदि अकेली धूप ही मिले तो वे जल्द सूख जाते हैं। प्रकृति में जिस प्रकार काम होता है जब हमें यह मालूम हो जाता है तो इस बात के समझने में हमें कोई भी कठिनता नहीं रह जाती कि सन बाथ से उत्पन्न खराबियाँ ठण्डे स्नानों से किस प्रकार दूर हो जाती है। सन बाथ के साथ लुई कूने के ठण्डे स्नानों के करने से रोग बहुत ही शीघ्र अच्छे होते हैं।

कोई-कोई ख्याल करते होंगे कि धूप का प्रभाव ढके हुये शरीर के हिस्से की अपेक्षा नंगे शरीर के हिस्से पर अधिक होता होगा किन्तु उनका ऐसा ख्याल करना भूल है। प्रकृति की ओर देखने और ध्यान से इसका उत्तर मिल जाता है। अँगूरों की ओर देखिये। क्या अँगूर धूप से बचाव के लिये पत्तों की आड़ में नहीं हो जाते। जो पत्तियों से अच्छी तरह ढके रहते हैं वे मीठे होते हैं और अच्छी तरह पकते हैं, किन्तु जो खुले रहते हैं वे या तो सड़े हो जाते हैं या उनकी वृद्धि मारी जाती है। शाहदाने के वृक्ष की भी यही दशा उस समय होती है जब फल तो पक जाते हैं, किन्तु पत्तियाँ कीड़े खा जाते हैं। ऐसी दशा में फल बिना पके ही सूख जाते हैं। यदि साया के लिये पत्तियाँ रहें तो यह दशा न हो। पकने के लिये हरेक फल को पत्तियों की आवश्यकता है। उपरोक्त उदाहरणों से यह बात भलीभाँति सिद्ध होती है कि सूर्य की परोक्ष और अपरोक्ष धूप का क्या प्रभाव होता है।

नंगे सर पर धूप का प्रभाव हानिकारक होता है और इससे नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं। यदि हम शरीर को कपड़े से ढके रहें तो चमड़े के छेद अति शीघ्र खुल जाते हैं और उनमें से पसीना भी अति शीघ्र निकलने लगता है।

पसीना और भी अधिक उस समय निकलता है, जब हम उसमें, ऐसी चीज रखते हैं जिसके भीतर पानी हो। ऐसा पानी ताजे और हरे पत्तों में हुआ करता है।

सूर्य की किरणों का प्रभाव काले कपड़ों में दूसरा होता है और सफेद कपड़ों में दूसरा। इसलिये यह बात विचारणीय है कि हम बाथ के समय सिले कपड़े पहिनें या हरे-हरे पत्ता को काम में लावें। लुइ कूने का अनुभव है कि विजातीय-द्रव्य में हरे-हरे पत्तों से छनकर जो किरनें जाती हैं वे हो उसको और सब प्रकार के वस्त्रों से कहीं अधिक ढीली करती हैं। सन बाथ के साथ और दूसरे ठंढे स्नानों से पेड़ू में पड़ी हुइ गुमड़ियों का, दमा को और गठिया को बड़ा लाभ हुआ है।

हिप बाथ या उदर स्नान—इसके लेने की विधि इस प्रकार है, जैसा चित्र न० ८ में है। एक टब में ४८ से ६८° फारेन हाइट तापमान का जल इस प्रकार भरिये कि वह ऊपर नाभी तक रहे और नीचे जाँघों तक। स्नान करने वाला फिर उसमें बैठ कर एक मोटे गीले अँगवछे से नाभी से नीचे की तरफ और एक कोख से दूसरी कोख तक शरीर को रगड़े जब तक शरीर में ठण्ढक न मालूम होने लगे।

प्रथम प्रथम यह स्नान ५ से १० मिनट तक लेना चाहिये। इसके बाद अभ्यास पड़ने पर समय बढ़ा देना चाहिये। कमजोर मनुष्यों और बच्चों के लिये थोड़े ही मिनटों का स्नान काफी है। स्नान करते समय इस बात पर पूरा ध्यान रक्खा जाय कि पैर और शरीर के ऊपरी धड़ पर पानी न पड़ने पावे। पैरों में कम्बल डाल लिया जाय तो और भी अच्छा है। स्नान के बाद व्यायाम द्वारा शरीर को गरम करना आवश्यक है। जो रोगी अत्यन्त निर्बल हैं या सख्त बीमार हैं, उन्हें गरमी लाने के लिये खूब ओढ़कर चारपाई पर लेट रहना चाहिये। यदि गरमी इस

प्रकार जल्दी न आवे तो पेड़ू पर ऊनी पट्टी बाँध देना चाहिये।

उदर स्नान रोगी की दशा के अनुसार दिन में एक से तीन बार तक लिये जा सकते हैं। जल का तापमान भी रोगी की दशा के अनुसार रखना आवश्यक है। किसी-किसी रोग की दशा में केवल मेहन स्नान ही लिये जाते हैं और किसी किसी में उदर और मेहन दोनों लिये जाते हैं।

सिट्ज बाथ या मेहन स्नान—स्त्री-सम्बन्धी रोगों के लिये यह स्नान अत्यन्त लाभकारी है। इसके लेने की विधि इस प्रकार है। स्त्रियों के लिये टब में एक स्टूल रख दिया जाता है। तब उसमें इतना पानी भरा जाता है कि वह स्टूल पर बैठने के स्थान पर चारों ओर टकराता रहे लेकिन बैठने की जगह गीली न हो। स्नान करने वाली फिर उसी स्टूल में पैर टब के बाहर निकालकर बैठ जाये और फिर मोटे कपड़े को पानी में भिगो भिगो कर जननेंद्रिय को धोये। कपड़े से एक बार जितना पानी उठाया जाय उतना उठाना चाहिये। जननेंद्रिय को ज़ोर से नहीं रगड़ना चाहिये कि छिल जाय। एक दम नङ्गा होकर यह स्नान करना चाहिये। टाँग, पैर और शरीर का ऊपरी भाग शुष्क रहना चाहिये। यदि चूतड़ पानी से भीग जाय तो कोई हानि नहीं। मासिक धर्म के समय यह स्नान बन्द रखना चाहिये। यदि खून का निकलना आरोग्यता की दशा से अधिक हो तो इस समय भी स्नान लेते रहना चाहिये। मासिक धर्म में २ या ३ दिवस से अधिक नहीं लगना चाहिये। हद से हद ४ रोज। या ४ रोज से अधिक खून जारी रहे तो यह समझ लेना चाहिये कि स्त्री की रुग्ण अवस्था है। जल का तापमान साधारणतया ४० से ६० फैरन हाइट होना चाहिये। खास-खास रोगों में ६६ तक दिया जा सकता है।

यह स्नान रोगी की आयु और उसके रोग के अनुसार १० मिनट से एक घण्टे तक लिया जा सकता है। सरदी में कमरे को

चित्र (स)

चित्र (५)
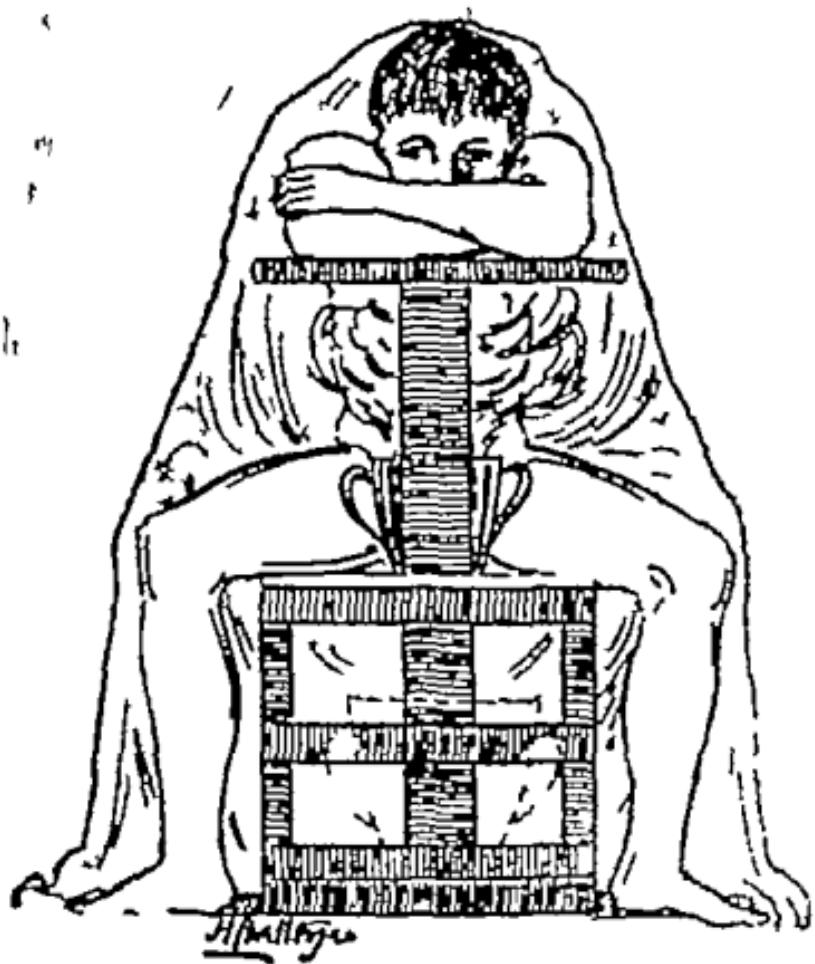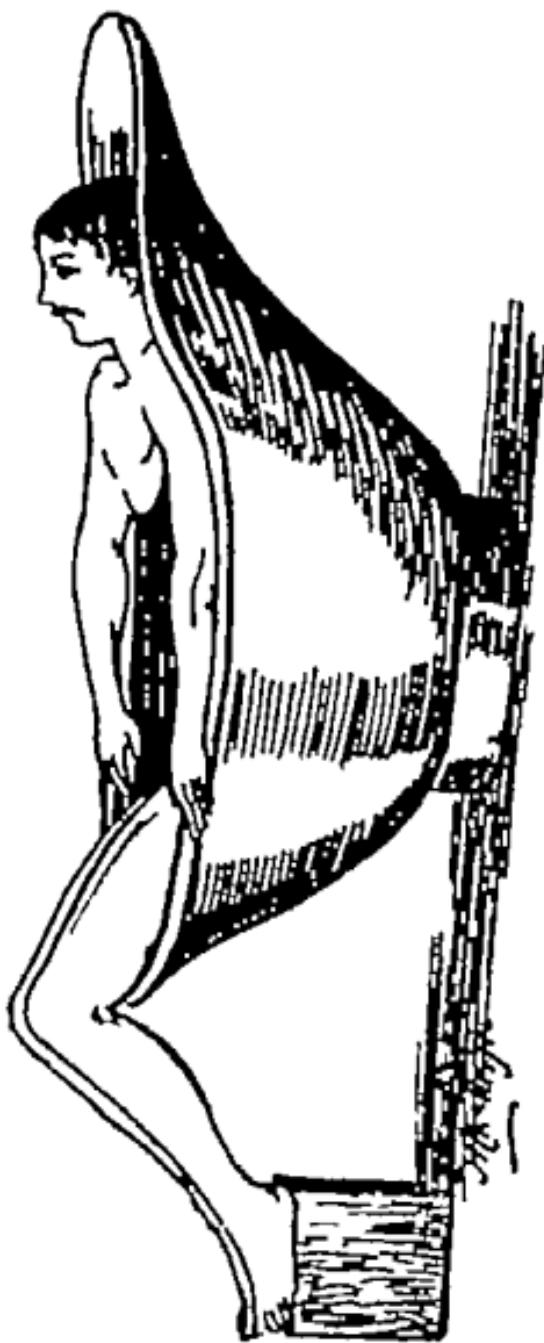
गरम करना चाहिये। जल जितना ठंडा होगा उतना ही लाभ अधिक होगा। किंतु इतना ठंडा न होना चाहिये कि स्नान करने वाले के हाथ जलने लगें। गरम देशों में अधिक ठंडा पानी नहीं मिल सकता किंतु वहाँ उतना ही ठंडा पानी काम में लाना चाहिये जितना प्रकृति से मिल सके। इस बात की चिंता न करनी चाहिये कि यहाँ बहुत ठंडा पानी नहीं मिलता इसलिए लाभ कम होगा। गरम देशों में जल और वायु में वही सम्बन्ध होता है जो ठंडे देशों में होता है। दोनों दशाओं में स्नान का प्रभाव एक ही सा होता है। यह रिपोर्टों से भली भांति सिद्ध हो चुकी है।

जिस स्थान में हिप बाथ लेने का टब न मिले वहाँ कोई भी कपड़ा धोने का टब सिट्ज बाथ के काम में आ सकता है उसे इतना बड़ा अवश्य होना चाहिये कि एक स्टूल रक्खा जा सके और ५ या ६ गैलन पानी समा सके। (एक गैलन ३ सेर १० छटाँक के बराबर होता है) यदि टब छोटा होगा और कम जल से यह स्नान किया जायगा तो लाभ कम होगा। कुएँ का ठंडा पानी चश्मे क ताजे पानी से अधिक लाभदायक है किन्तु जहाँ केवल चश्मे का ही पानी उपलब्ध है, वहाँ उसी से काम लेना चाहिये।

पुरुषा क लिय—पुरुषों के लिए सिट्ज बाथ लेने की वही विधि है जो स्त्रियों के लिए। स्नान करने वाले पुरुष को चाहिये कि वह लिङ्ग को बन्द करले और फिर जिन उँगलियों से सुविधा हो उस के अग्रभाग के चमड़ा खींचकर बायें हाथ से पानी के भीतर ले जावे और कपड़े से लगातार उसे रगड़-रगड़ कर धीरे धीरे धोये। अधिक न रगड़े कि चमड़े छिल जाय। इस स्नान में गलती न करना चाहिए, किसी विशेषज्ञ से पूछ लेना अच्छा है।

नोट १—हमारे देश में मिट्टी के घड़े में रक्खा हुआ जल सिट्ज बाथ के लिये अच्छा है।

नोट २—यदि टब न मिल सके तो मिट्टी की नाद ऊँचे स्थान में गाड़कर और उसमें काठ की एक पतली पटरी रख कर भी सिट्ज बाथ लिया जा सकता है।

नोट ३—मुसलमानों के यहाँ लिङ्ग का अग्रभाग खतने के समय काट दिया जाता है। उनको उस स्थान को तौलिये से रगड़ना चाहिये जो टाँगों और अंडकोष के बीच में है और कमर के नीचे के भाग को स्टूल के ऊपर ३ अँगुल ऊँचा रखना चाहिये।

जो रोगी भीतर सूजन से पीड़ित हैं या जिनके भीतर अंगों में दीर्घकालीन रोग के कारण सड़न आ गई हो उन रोगियों का भीतरी सूजन पहिले ही स्नान से नीचे खिंचकर जननेन्द्रिय के अगल-बगल आ जाता है। इससे घबड़ाना न चाहिये। स्नान पूर्ववत् करते रहना चाहिये और मोटे कपड़े की जगह पतले कपड़े का व्यवहार करना चाहिये।

स्टूल के ऊपर २ अंगुल पानी चढ़ाकर बहुतेरे रोगियों को सफलता शीघ्र मिल सकती है, किन्तु ऐसी दशा में जल ६६ से ७३ फैरन हाइट होता है। इसमें चूतड़ पानी के भीतर होते हैं और शेष क्रिया वैसी ही होती है।

कुछ लोगों को भ्रम होता होगा कि सिट्ज बाथ में धोने के लिए जननेंद्रिय का ही चमड़ा क्यों चुना गया है, शरीर का कोई और हिस्सा क्यों नहीं चुना गया। किंतु वास्तव में सच्ची बात यह है कि इस काम के लिए इससे बढ़कर दूसरा स्थान है ही नहीं। शरीर के किसी भी हिस्से में मुख्य मुख्य रगों के इतने सिरे नहीं हैं जितने जननेन्द्रिय के अग्रभाग में। सिरे उन रगों की शाखायें हैं जो रीढ़ से निकलती हैं और ये ही नरवस सिम्पैथी

कस (यह गिलटियों की एक कतार है जो खोपड़ी से गुदा की हड्डी तक पीठ के मोहरों के दोनों ओर फैली हुई है) की भी शाखायें हैं। इनका सम्बंध मस्तिष्क से है इसलिए उनको धोने से सारे शरीर पर उसका प्रभाव पड़ता है। जननेन्द्रिय में धोने से भी सारे शरीर पर प्रभाव डाला जा सकता है। शरीर भर की सारे शरीर रूपी वृक्ष की शाखायें वास्तव में आकर जननेन्द्रिय में ही मिलती हैं। जननेन्द्रिय को धोने से भीतर बढ़ी हुई गरमी केवल कम नहीं हो जाती बल्कि रगों में भी विशेष ताजगी आती है। रगों में ही क्यों, इससे शरीर के छोटे से छोटे हिस्से में जीवन-शक्ति पहुँचती है। नश्तर से जिन अंगों का सम्बन्ध विच्छेद हो गया है वहाँ शक्ति बलबसे नहीं पहुँचती। जिन लोगों ने जल चिकित्सा का अनुभव किया है उन्होंने देखा होगा कि सिट्ज़ बाथ में ये सब बातें मौजूद हैं जिनसे सब रुकावटें दूर होती हैं जो शरीर को अपना काम नहीं करने देतीं।

साष्ट में जो समानता का भाव रहता है उस ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। इसको एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। गरम पानी का एक ग्लास और ठंडे पानी का एक ग्लास दोनों अपने पास रखिये। गरम ग्लास ठण्डे को गरम करेगा और ठंडा गरम को ठंडा करने का प्रयत्न करेगा। इस प्रकार दोनों का तापमान थोड़ी देर में एक हो जायगा। यह समानता केवल निर्जीव पृथ्वी में ही नहीं होती जैसा लोग ख़याल करते हैं। यह समानता शरीर और जिन परिस्थितियों में वह रहता है, उनमें भी पाई जाती है। भीतर से बाहर को और बाहर से भीतर को एक प्रकार की तबदीली गरमी में होती है जिसको यदि बिजली की लहर कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। जिस प्रकार प्राकृतिक लहर में बल होता है उसी प्रकार इस लहर में भी बल होता है। यह बल ज्यों-ज्यों बढ़ता

१०—हम क्या खायें ? और क्या पियें ?

दुनियाँ की सारी बीमारियाँ केवल कुपथ्य के कारण उत्पन्न होती हैं। कुपथ्य से विजातीय द्रव्य पैदा होता है और विजातीय द्रव्य से रोग पैदा होता है। अतएव जल-चिकित्सा में यह जानना परम आवश्यक है कि हम क्या खायें ? और क्या पियें ?

विद्युत की शक्ति उत्पन्न करने के लिये कुछ मुख्य मुख्य तत्वों (elements) की आवश्यकता पड़ा करती है। आम्ल पदार्थ (acid) में जिंक (जस्ता) और कार्बन (carbon) की पटरियों को डालने से विद्युत शक्ति पैदा होती है। फिर यही शक्ति तार द्वारा धन (pesetune) और ऋण (negaline) नाम से प्रवाहित धारा में लाई जाती है। यदि जस्ता और कार्बन के स्थान में हम उन्हीं की तरह दूसरे तत्वों को प्रयोग में लायें या उन्हीं को पीसकर काम में लायें तो अन्तर मालूम होने लगेगा। या तो विद्युत पैदा न होगी या पैदा होगी तो बहुत कम। मनुष्य के शरीर में जीवन-शक्ति का भी यही हाल है। कम व अधिक जीवन शक्ति का उत्पन्न होना भोजन के उचित चुनाव पर है। वायु में जो हमारा मुख्य भोजन है यह बात भली भाँति देखी जा सकती है। यदि हम एक मनुष्य को साधारण वायुमंडल से ले जाकर दूषित वायु के वायुमंडल में रख दें तो वह कुछ मिनटों में मर जायगा। नवीन परिस्थिति का उसकी जीवनी-शक्ति पर कोई प्रभाव न पड़ेगा।

खराब भोजन का प्रभाव धीरे-धीरे देर में प्रतीत होता है। स्वाभाविक भोजन और हलाहल विष में जमीन आसमान का अन्तर है। स्वाभाविक और अस्वाभाविक भोजनों का अन्तर कठिनता से मालूम होता है। किन्तु ज्योंही मालूम होने लगे कि

हमें बदहजमी हो रही है और पेट में विजातीय द्रव्य इकट्ठा होने लगा है तो उसी समय हमें समझ लेना चाहिये कि हमारा भोजन स्वाभाविक नहीं है और उस छोड़ देना चाहिये।

खराब भोजन और खराब पाचन-शक्ति जीवन में होने वाले नित्यप्रति उदाहरणों में और भी अधिक समझाये जा सकते हैं। हम लोगों से मजबूत और मोटे-तगड़े मनुष्यों से रोज मुलाकात होती है। वे कहते हैं कि हम मीनन कम करते हैं लेकिन न मालूम क्यों इतने मोटे होते जा रहे हैं। ऐसे मनुष्य वस्तुतः अधिक खाने से ही मोटे होते हैं। दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अपनी समझ से अच्छा भोजन भरपेट करते हैं किन्तु वे दुबले-पतले रहते हैं। यदि उनके भोजन को देखा जाये तो उन्हें अधिक हृष्ट पुष्ट होना चाहिये। बात यह है कि यह भोजन बिना यथेष्ट लाभ पहुँचाये शरीर से बाहर निकल जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि खाने-पीने के पदार्थों के निकल जाने से ही पाचन शक्ति की शुद्धता नहीं प्रगट होती है।

इस प्रकार इस संसार में साधारणतया दो श्रेणी के पुरुष होते हैं। एक श्रेणी के पुरुष कहते हैं कि हम बहुत कम खाकर मोटे तगड़े हो सकते हैं और दूसरी श्रेणी के पुरुष कहते हैं कि हम बहुत खाकर भी दुबले-पतले रह सकते हैं। दोनों में प्रत्यक्ष रूप से विरोध होते हुये भी दोनों दशाओं में रोग का कारण एक ही है और वह कारण है खराब पाचन शक्ति और खराब भोजन। यह सिद्धांत स्थिर कर लेने के अनन्तर अब यह भली भाँति समझ में आ सकता है कि क्षयी रोग से पीड़ित मनुष्य को भूख खूब लगती है और अपनी समझ में वह खाता भी काफी है। लेकिन उसका खून नहीं बनता और वह दुर्बल रहता है और दूसरी ओर मोटे-तगड़े और आदमियों को भूख नहीं लगती।

अतएव भोजन की अधिकता से बचने का मार्ग सीख

निकालने का काम कोई कठिन नहीं है। बुद्धिमान पाठक इस बात को स्वीकार करेंगे कि अंडे, गोश्त, मदिरा, अंगूरी शराब, जौ की मदिरा, कहवा, चाय आदि पदार्थ स्वास्थ्य-वर्द्धक और भोज्य-पदार्थ नहीं हैं बल्कि वे पदार्थ तन्दुरुस्ती को बढ़ाने वाले और भोज्य-पदार्थ कहलाने योग्य हैं जो आसानी से और शीघ्र पचते हैं। जितना शीघ्र भोजन पाचक होगा उतना ही अधिक शरीर उससे अधिक लाभ उठायेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर की जीवन शक्ति खाये हुये भोजन के पाचन पर निर्भर है।

भोजन पचने में जितना भारी होगा उतना ही अधिक समय शरीर को उसके पचाने में लगेगा। यदि हम भारी भोजन करें तो दूसरी बार भोजन करने के लिए हमें उस समय तक रुकना चाहिये जब तक पहिला भोजन हजम न हो जाय। किन्तु अभाग्य वश हम ऐसा नहीं करते क्योंकि हमारा स्वभाव इस प्रत्यक्ष अनाहार के प्रतिकूल है। हम लोग उपवास के महत्व को नहीं जानते। प्रकृति ने जो उपवास नियत किये हैं मनुष्य उनको भूल गया है। हमने प्राय: कहते सुना है कि सर्दी का सामना करने के लिए जाड़े में हमें अधिक भोजन करना चाहिये। यह सृष्टि के नियमों के बिलकुल विरुद्ध है। जाड़े के दिनों में वास्तव में अधिक खाने से भारी हानि होती है। प्रकृति में उपवास का नियम हर स्थान पर मिलता है। साँप एक बार जब भोजन कर लेते हैं तो हफ्तों नहीं खाते। हरिण और सियार कई सप्ताह तक भोजन नहीं करते और उन्हें न तो जाड़ा सताता है और न थकान मालूम होती है। यदि ये जीवधारी गरमी की तरह जाड़े में भी भोजन करें तो बीमार पड़ जायें और जाड़े को न सह सकें। जाड़ा थकान को रोकता है और इसलिए पाचन शक्ति को भी रोकता है। जितना भोजन गरमी में पचता है उतना भोजन जाड़े में नहीं पचता। हमारे घरेलू

जानवर दिन-रात तबेले में बँधे रहते हैं और उन्हें खाने को भी खूब दिया जाता है, इसलिए वे जाड़े की सर्दी नहीं सह सकते। जंगल में घूमनेवाले जानवर जाड़े में तूफानों का भी मुकाबला करते हैं; क्योंकि उनके शरीर में एक प्रकार की शारीरिक सहन-शक्ति उत्पन्न होती रहती है। शोक की बात तो यह है कि इस ओर लोगों का ध्यान कम जाता है।

इस कथन से यह बात स्पष्ट है कि रोग भोजन की अधिकता से उत्पन्न होता है। और इसलिए यह बात हमारे लिए विचारणीय है कि "हम क्या खायें, किस प्रकार खायें और कहाँ खायें।"

यदि हम उबाला हुआ जल पियें तो वह अरुचिकर मालूम होता है। दूसरी ओर यदि हम ताजा ठंढा पानी पीवें तो वह कैसा स्वादिष्ट मालूम होता है। कच्चा सेब भी कितना स्वादिष्ट मालूम होता है। यही बात वायु में भी है। बन्द कमरे की वायु से, जिसमें बहुत से आदमी बैठे हों, प्रायः सर घूमने लगता है और वे बाहर आकर अच्छी हवा में साँस लेने के लिए कितने उतावले होते रहते हैं। स्वच्छ हवा की तरह 'हम कहाँ भोजन करें' यह भी जानना जरूरी है। कमरे में बैठकर खाने की अपेक्षा खुली हवा में खाने से भोजन जल्द पचता है, क्योंकि भोजन चबाते समय अच्छी हवा भोजन में काफी तादाद में मिल जाती है और उस हवा का पाचन-शक्ति पर भी अच्छा असर होता है।

जो भोजन अति पाचक होते हैं वे वास्तव में शरीर की पुष्टि के लिए अत्यन्त अनुकूल हैं। जहाँ भोजन सहज में पचता है वहाँ अधिक भोजन भी नहीं होता। अतएव इस बात की खोज करना अत्यन्त आवश्यक है कि कौन से भोजन जल्द पचते हैं अर्थात् कौन से भोजन से जीवन-शक्ति अधिक मिलती है। वास्तव में यह प्रश्न जितना जटिल है उतना ही सीधा भी है।

ऐसे भोजन जो अपनी प्राकृतिक दशा में स्वादिष्ट होते हैं और जिनको खाने की हमारी इच्छा होती है वे भोजन, हैं जो जल्द पचने वाले होते हैं और जिनसे अधिक जीवन-शक्ति मिलती है।

जो भोजन पकाये जाते हैं, जिन भोजनों में हम मसाले डालते हैं या, जिन भोजनों में सिरके और खटाई डाली जाती है, उन भोजनों में प्राकृतिक भोजनों की अपेक्षा कहीं कम जीवन शक्ति होती है और ये जल्द पचते भी नहीं। पकाये हुए भोजनों में से भी वे भोजन जल्द हजम होते हैं, जो सादे ढंग में पकाये और जिनमें मसाले बहुत कम डाले जाते हैं।

खमीरदार पदार्थ जैसे शोरवा, शराब, कहवा आदि उन पदार्थों से देर में हजम होते हैं जो अपने असली रूप में हज़म होने के योग्य होते हैं। इसलिए लगातार खमीरदार पदार्थों के सेवन करने से मेदा कमज़ोर हो जाता है और पाचन-शक्ति मारी जाती है।

वे भोजन जिनसे मनुष्य को घृणा उत्पन्न हो अथवा जिनसे मेदे में भारीपन मालूम हो, स्वास्थ्य के लिए हमेशा हानिकर हैं, चाहे वे कितना ही बढ़िया तरीके से क्यों न पकाये गये हों। भोजनों में सब से दूषित भोजन माँस है। कोई आदमी पशु को चबा-चबाकर नहीं खाता या उस का कच्चा माँस नहीं खाता। मसाला लगाकर और स्वादिष्ट बनाकर उसी को हम खाते हैं और उसको अपने स्वभाव के अनुकूल बना लेते हैं, किन्तु वास्तव में इतनी मक्कारी करते हुए भी हम उसे स्वास्थ्यकर किसी प्रकार भी नहीं बना सकते।

सब प्रकार के भोज्य पदार्थ पूर्ण पकने की अपेक्षा कम पकने की अवस्था में जल्द हज़म होते हैं और अधिक शक्ति देते हैं। अभाग्यवश जनता समझती है कि कच्चे भोज्य पदार्थ

स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं। क्योंकि उससे दस्त होते हैं और आँव पड़ती है। उनका यह विचार भ्रमपूर्ण है। वास्तव में दस्त उनको होते हैं और आंव उनको पड़ती है जो मांस खाने पर शाही मीर पराक्रम किसी दिन कच्चे फल या कच्चे सेव खा लें। कच्चे फल किस प्रकार जल्द हजम होते हैं उसका सबूत बड़ा आसान है। आसानी से पचनेवाले भोजन को उफान उठानेवाली क्रिया अति शीघ्र बदल देती है जो देरी से पचनेवाले भोजन में सम्भव नहीं है। यदि पचाने वाले यन्त्रों में से पदार्थ मौजूद हैं जो जल्दी नहीं पचते या जो उफान की क्रिया से अपना स्वरूप नहीं बदलते, उनपर कच्चे फलों की उफान उत्पन्न करने वाली क्रिया का विशेष प्रभाव पड़ता है और वे भी उफान उठने की दशा में हो जाते हैं। इस प्रकार दस्त होने लगते हैं जिसको लोग अत्यन्त भयानक समझते हैं। इन दस्तों से कभी भी न डरना चाहिये। वे विजातीय-द्रव्य को बाहर निकालकर शरीर को लाभ पहुँचाते हैं।

खिलाते-खिलाते जब कुत्ता की भूख मारी जाती है तो आपने देखा होगा कि वे घास नोच-नोचकर खाते हैं जो मांसा हारी पशुओं का खाद्य-पदार्थ नहीं है। कुत्ते को अपनी पशु बुद्धि से ऐसा मालूम हो जाता है कि भोजन से भरे हुए मेरे मेदे को पचाने में यह घास सहायता पहुँचा सकती है।

जिन लोगों को मेदे का रोग हो या जिन लोगों की पाचन् शक्ति खराब हो गयी हो उनको पके हुए फल की अपेक्षा कच्चे फल खाना चाहिये और जब तक मेदे में पके फल को पचाने की शक्ति न आ जाय तब तक कच्चा फल ही खिलाते रहना चाहिये।

जो हाल फलों का है वही हाल दूसरे भोज्य पदार्थों का भी है। सब प्रकार के अन्न दाने के रूप में पचने में बड़े हल्के होते हैं और उनमें प्राण-शक्ति भी अधिक होती है। दानों को

काम तो अधिक पड़ता है किन्तु अच्छी तरह चबाने से और अच्छी तरह थूक में उनके मिल जाने से वे जल्द पच जाते हैं। सौभाग्य से वे लोग अन्न सखा चबा सकते हैं जिनके दाँत मजबूत हैं। जिनके दाँत मजबूत नहीं हैं उन रोगियों को अन्न चबाना चाहिये। जो रोगी बिना छने आटे की रोटी नहीं पचा सकते उनको पहिले दला हुआ ही अन्न चबाने के लिए देना चाहिये। दले हुए कच्चे अन्न और फल में रोटी से अधिक गुण है। रोटियों में बिना छने हुए गेहूँ के आटे की रोटी सबसे अधिक गुणकारी है। प्रायः लोग धोकर छानकर रोटी बनाते हैं। ऐसी रोटी कठिनता से पचती है और कब्ज पैदा करता है। धोकर वस्तुतः पाचन में सहायता पहुँचाता है।

जई घोड़ों का उत्तम भोजन है। किन्तु उसकी उत्तमता तभी समय तक है जब वह ठीक ढंग पर तैयार करके घोड़ों को दी जाय। यदि जई में भूसी मिलाकर घोड़ों को खिलाया जाय तो वे उसे बड़ा आसानी से पचा लेंगे और उनका बल भी बढ़ेगा। यदी भूसी न मिलावें और जई घोड़े को ऐसे ही खाने को दें तो हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं कि घोड़े उसे जल्दी नहीं पचाते। यदि घोड़ों को ऐसी जई दी जाय जिसके छिलके निकाल लिये गये हों तो जई और भी कठिनता से घोड़ों को हजम हो सकेगा। वे मोटे होते जाते हैं, किन्तु उनकी पाचन-शक्ति खराब होती जाती है और वे काम करने के अयोग्य होते जाते हैं। जई के पचाने का रहस्य उसका छिलका है। जितना छिलका अधिक रहेगा उतना ही जई जल्द हजम होगी। सब अन्नों की अपेक्षा जई में सबसे अधिक भूसी रहती है, इसलिए वह घोड़ों के लिए गेहूँ से भी ज्यादा गुणकारी है।

जई का छिलका घोड़ों की लीद के साथ निकल जाता है। इससे यह न समझना चाहिए कि पाचन-शक्ति के लिए यह छिलका

निष्फल बोझ है। यह छिलका घोड़े के लिए भोजन पचाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जिस स्वरूप में जो भोज्यपदार्थ ईश्वर ने हमें दिये हैं वे उसी स्वरूप में सबसे जल्दी पचते हैं।

मनुष्य के लिए भी यह विचार करना अत्यन्त आवश्यक है कि किस रूप में हम भोजन करते हैं। लोग प्राय: कहते हैं "हम दाल नहीं पचा सकते क्योंकि उससे पेट में गड़बड़ी होने लगती है।" परन्तु इस कथन की सत्यता 'दाल किस प्रकार तैय्यार की गई है' इस पर निर्भर है। यदि दाल रोटी या पूरी के साथ पतली खाई गई तो गड़बड़ी अरूर पैदा होगी क्योंकि दाल बिना दाँतों द्वारा चबाई हुइ सीधे मेदे में पहुँच जाती है और पचने के योग्य नहीं होती। दूसरी ओर यदि हम मटर को थोड़े पानी में उबालें तो वे सब पानी सोख लेंगे और मुँह से चबाने लायक हो जायँगे। ऐसी दशा में हम चबाकर उन्हें मेदे में डालेंगे और उससे गड़बड़ी फिर नहीं पैदा हो सकती है।

एक मजदूर को मुट्ठी भर मटर पर ही रोज तीन महीने तक रहना पड़ा। वह घंटों मटरों को मुँह में घुमलाता और फिर उन्हें दाँतों से कुचल-कुचल कर मेदे में डालता था। उसका कहना है कि मैंने जीवन में ऐसे अच्छे स्वास्थ्य का कभी भी अनुभव नहीं किया। इससे मालूम होता है कि प्राकृतिक अवस्था में कोई भी खाद्य-पदार्थ कितना गुणकारी होता है। इस उदाहरण से यह भी सिद्ध होता है कि भोजन को शक्ति-दायक बनाने के लिए भी प्रकृति का नियम हमेशा तैयार रहता है।

अधिक भोजन पचाने के लिए मनुष्य को कितना भोजन करना चाहिए, यह बताना कठिन है। मुश्किल से दो आदमियों की पाचन-शक्ति एक प्रकार की होती है। अतएव दोनों के लिए भोजन की तौल या भोजन प्रकार बतलाना कठिन है। प्रत्येक

को अपना भोजन अपनी प्रकृति के अनुसार निर्धारित कर लेना चाहिये।"

पाचन किया स्वयं एक प्रकार का उभाड़ शरीर के भीतर उत्पन्न करती है। इसके द्वारा भोजन शरीर के भीतर कई प्रकार के पदार्थों में बदल जाता है। उन में से शरीर को जितनी आवश्यकता होती है खींच लेता है। कुछ भोजन कठिनता से पचते हैं जिनके पाचन की योग्यता को हम बनावटी रीति से पकाकर या नमक और मीठा मिलाकर बदल देते हैं। उनके उभाड़ में बुरा प्रभाव पड़ने के कारण उनको पचने की दशा में आने के लिए अधिक समय लगता है। यानी वे उदर भाग में आवश्यक समय से अधिक देर तक पड़े रहते हैं। जिससे उभाड़ की दशा साधारण श्रेणी से बढ़ जाती है और इससे शरीर का तापमान भी बढ़ जाता है। इस प्रकार भीतर उत्पन्न हुई अधिक मात्रा की गरमी से अँतड़ियों के भीतर मल में अधिक कड़ापन आ जाता है और मल सूख जाता है।

पाचन की क्रिया मुँह से शुरू हो जाती है। भोजन फिर मेदे में पहुँचता है जहाँ मेदे का रस इससे खूब मिल जाता है और इस पर अपना पूरा प्रभाव डालता है। इस प्रकार भोजन अपने प्राकृतिक भागों में अलग होता है, और उसमें बहुत परिवर्तन होता है। वह फिर आगे को बढ़ता है और अँतड़ियों में सड़न की क्रिया और भी अधिक बढ़ जाती है और उसमें पाचन को सहायता पहुँचाने वाले रस आकर मिल जाते हैं।

भोजन का जो भाग शरीर के लिए निरर्थक होता है वह अँतड़ियों, गुर्दों और त्वचा के द्वारा बाहर निकल जाता है। कभी-कभी हम देखते हैं कि थोड़े समय में बहुत से जानवर न पचनेवाली वस्तुयें जैसे हड्डियाँ, कंकड़ियाँ और लकड़िया के टुकड़े पूर्ण रीति से पचा लेते हैं, ये चीजें मुर्गी के पेट में बराबर देखने

में आती हैं। यदि ऐसे जीवों के मल की परीक्षा की जाती तो उसमें हमें कंकड़ियाँ या हड्डी के टुकड़े नहीं मिलते। इसके विरुद्ध प्राय: हम देखते हैं कि आदमी के पाकस्थली में भोजन एक सप्ताह तक पड़ा रहता है। इससे एक असाधारण सड़न उत्पन्न होती है। इस सड़न से जो वायु उत्पन्न होती है वह शरीर के लिए निरर्थक है। वह पसीने के द्वारा और गुदा द्वारा बाहर निकल जाती है। इस वायु को (पादने को) कभी नहीं रोकना चाहिए, क्योंकि उससे शरीर को हानि पहुँचती है।

यदि पाखाना भूरे रंग का बँधा हुआ हो और उस पर लसदार एक तह पाई जावे तो समझना चाहिए कि पाचन की दशा ठीक है। पाखाना को गुदा-द्वार में लगना भी न चाहिए। जानवर जब मल त्यागते हैं तो उनके गुदा में नहीं लगता। यही हाल स्वस्थ मनुष्य का भी होना चाहिए। मनुष्य के शरीर में मल निकलने का द्वार ऐसा सुन्दर बना हुआ है कि जब पाचन ठीक होता है तो उसमें पाखाना बाहर बिना किसी भाग को गंदा किये हुये निकला आता है। आबदस्त लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अच्छे पचे हुये पाखाने में बदबू भी नहीं निकलती।

यदि पाखाने में बदबू निकले तो समझना चाहिये कि पाचन के सम्बन्ध में कोई असाधारण दशा पैदा हो गई है, इससे कब्ज होता है। शुष्क आँतों में मल के टुकड़े जम जाते हैं और निकाले नहीं निकलते। सड़न का काम तब भी जारी रहता है और धीरे धीरे मल के कई टुकड़े हो जाते हैं और वायु अधिक तादाद में निकलकर सारे शरीर में फैल जाती है। पाचन-क्रिया से उत्पन्न भीतरी तनाव शरीर के आखिरी सिरों और त्वचा की ओर जाता है। यदि त्वचा अपना काम न करे और वायु बाहर न निकले तो वह त्वचा के नीचे जमा होती चली जाती है।

त्वचा की दशा अब और भी अधिक खराब हो जाती है,

यह अपना काम और भी सुस्ती से करती है और उसकी गर्मी कम हो जाती है। महीन रगें विजातीय-द्रव्य से इस कदर भर जाती हैं कि अच्छा खून त्वचा तक नहीं पहुँचता। इसलिए शरीर के बाहर की गर्मी कम हो जाती है और त्वचा का रङ्ग मुर्दों की तरह पीला पड़ जाता है। यदि खून में मूत्र के तत्व अधिक हों तो त्वचा का रङ्ग लाल होता है नहीं तो और दशाओं में पीला, मटमैला या हरा। बाहर की सर्दी भीतरी गर्मी की अपेक्षा वायु-स्वरूप विजातीय-द्रव्य को और भी कड़ाकर देती है। बाहर की सर्दी और भीतर के दबाव से विजातीय-द्रव्य शरीर स्थल में भर जाता है इससे शरीर में रूपान्तर होता जाता है और हम उसे विजातीय-द्रव्य का भार कहते हैं। इसी विजातीय-द्रव्य से आँखों में कानों में, दिमाग में और सर में बीमारी पैदा होती है। इस रोग के कारण को समझकर हम दावे के साथ कह सकते हैं कि जो लोग एक ही स्थान में दवा लगाकर उसे अच्छा करना चाहते हैं वे कितने भ्रम में पड़े हुए हैं, और बीमारी के असली तत्व को नहीं जानते।

साधारण पुरुषों की धारणा शुद्ध पाचन-शक्ति के विषय में क्या है, यह वास्तव में एक विचारणीय विषय है। लोग प्रायः कहते हैं, "मेरी पाचन-शक्ति बहुत बढ़िया है, मैं दो सेर बरफी और तीन सेर पेड़ा खा सकता हूँ, चार बोतल शराब पी जाता हूँ और बदहज्मी नाम को भी नहीं होती।" यदि इस कथन को ठीक मान लें तो भी इन भोजनों से उतना ही नुकसान है जितना एक दिन में १० सिगार पीने से। तम्बाकू शरीर के लिए विष है और विष रहेगी। यदि शरीर का विष निकालना पड़ा तो कष्ट होगा ही। यही हाल खाने-पीने का भी है। पूर्ण स्वस्थ मेदा प्रतिकूल भोजन के एक कण को भी रखना पसन्द न करेगा। खट्टी डकार, छाती की जलन और बेचैनी द्वारा यह

बतला देता है कि मुझ से अधिक काम लिया गया है। शक्तिहीन मेदा प्रकट रूप में सब भोजनों को स्वीकार कर लेता है अर्थात् प्रतिकूल और अधिक भोजन को रोकने की उसमें शक्ति नहीं रहती। कहने का तात्पर्य यह है कि मेदे की स्वाभाविक क्रिया नष्ट हो जाती है। भोजन बिना पूर्णरूप से पचे बाहर निकल जाता है और उनके शरीर को उससे लाभ नहीं पहुँचता।

भोज्य-पदार्थों में बल पहुँचाने की योग्यता का प्रमाण मेदे की पाचन-शक्ति पर निर्भर है। हरएक पदार्थ में बल पहुँचाने की कितनी शक्ति है, यह दूसरा विषय है। मोटे आटे की रोटी, ताजे फल, सब प्रकार की तरकारियाँ, बिना नमक या चीनी की सादी रीति से पकाया हुआ भोजन शरीर के लिए सब उत्तम शराब, कीमती मांस या अंडों से कहीं अच्छा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शराब, मांस आदि में शरीर में मिलने वाले सब रसायनिक पदार्थ मौजूद हैं किन्तु इसका कोई सबूत नहीं है कि वे शरीर के लिए गुणकारी और बल बर्द्धक हैं। शरीर अत्यन्त साधारण भोज्य-पदार्थों से भी जैसे अन्न के वह सब भाग जो विज्ञान ने शरीर के लिए आवश्यक हैं, निकाल सकता है। जिस अन्न की रोटी बनती है यदि वह खूब चबाया जाय तो मेदे में जाते ही खट्टी हो जाती है। पाचन क्रिया के प्रभाव से उस का रूपान्तर हो जाता है जिससे शरीर को पोषण मिलता है। ये सब शरीर में जब्ब हो जाते हैं। जो हिस्से नहीं पचते एक नियत रूप और रंग के बनकर बाहर निकल जाते हैं।

डाक्टरों की संख्या प्रतिदिन बढ़ रही है और उनके बढ़ने के साथ-साथ रोग भी बढ़ते जा रहे हैं। जल चिकित्सा के सिद्धान्तों को समझें या न समझें किन्तु इतना तो मानना

अवश्य पड़ेगा कि डाक्टरों से रोगों के हटाने में सन्तोष-जनक सहायता नहीं मिल रही है। जनता एक पत्र रखती है और उसी से प्राचीन ढंग से चलने वाले चिकित्सालयों के परिणामों को नापती है। न मालूम कितने पुरुष डाक्टरों के चक्कर में पड़कर अपना सर्वनाश कर बैठे हैं और न मालूम कितने पुरुषों ने डाक्टरों की सम्मति में पड़कर प्रकृति के नियमों को तोड़ा है और उसका उन्हें फल भी भोगना पड़ा है। वे अन्त में रोग के चंगुल में फँसे हैं।

एक बार हानोलूलू के एक उत्साही पादरी ने कुने महोदय को लिखा था, "यूरोप निवासियों के आने के पहिले यहाँ क आदि निवासी पोइ पर (जातीय भोजन) निर्वाह करते थे और साथ में केले आदि फल भी खाते थे, पानी में केवल शुद्ध जल का व्यवहार करते थ। व इस प्रकार स्वाभाविक भोजन करते थे। उस समय उनके डीलडौल बड़े होते थे और उनके शरीर में ताकत भी खूब होती थी। जब यूरोप के निवासी आये तो उन्होंने उनसे कहना शुरू किया कि केवल मांस और मदिरा से ताकत मिल सकती है। अब तो यहाँ मास क लिए पशु भेजे जाने लगे और शराब भी दूसरे देशों से आने लगी। १८ मई सन् १८१६ ई० में हवाई के एक सरदार ने पहिले-पहिल अपना खाना-पीना बदला था। सुअर का मांस अब उनका जातीय भोजन हो गया है और 'जिन मदिरा' जातीय पेय-पदार्थ। इसका परिणाम यह हुआ है कि ये बहुधा फोड़े फुन्सी आदि त्वचा के रोगों में या दमे के रोग में फँसे रहते हैं। गर्मी, सुजाक आदि की बीमारी भी उनमें बहुत मिलती है और बहुतों को कोढ़ हो जाता है।" इससे सिद्ध होता है कि नवीन सभ्यता से भोजन में परिवर्तन करने क कारण हवाई निवासी नाना प्रकार के रोगों में फँसे

गये। इससे यह भी सिद्ध होता है जो भोजन डाक्टर बतलाया करते हैं, वे शरीर के लिए उपयोगी नहीं हैं।

हम भोजन शरीर के भीतर दो इन्द्रियों द्वारा ले जाते हैं, फेफड़े और मेदा। इसमें से हरएक के द्वार पर एक सन्तरी पहरा देता है, अर्थात् फेफड़ों के वास्ते नाक और मेदे के लिए रसना, दोनों द्वारपाल कमजोर हैं। इसमें कोई शंका नहीं कि पर्वत की शुद्ध वायु हमारे फेफड़ों का सर्वोत्तम आहार है और उसी हवा में साँस लेने से हमें पूर्ण रूप से सन्तोष होता है। जिसको स्वच्छ हवा में रहने का अभ्यास है वह कई घंटे तक कोठरी में नहीं रह सकता। उसकी नाक बतलाती रहती है कि देखो इस कमरे में बैठने से तुम्हारा स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। किन्तु यदि वह रोज़ बैठता रहे तो यही गन्दी हवा उसके लिए सुखकारी होने लगती है। नाक भी फिर नहीं कुछ कहती सुनती। इस प्रकार उसकी घ्राण-शक्ति बिगड़ जाती है और उसे चंगा करने के लिए फिर अधिक समय लगता है। हम प्रति मिनट में १६ से २० बार साँस लेते हैं। विजातीय-द्रव्य के शरीर में मिलने के परिणाम शीघ्र प्रकट होने लगते हैं और यही कारण है कि हमारी बुद्धि उस समय हमें मार्ग दिखलाती है जब घ्राण शक्ति जवाब दे देती है।

रसना की हालत नाक से भी गई बीती है। बाल्यावस्था से वह बिगड़ जाती है और उस पर हम भरोसा नहीं कर सकते। वास्तव में यह बात प्रसिद्ध है कि हमारे आचरणों के अनुसार किस प्रकार रसनेन्द्रि में परिवर्तन हो सकता है। तथापि इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि शरीर को शुद्ध व अनुकूल भोजन मिले। सब प्रकार के प्रतिकूल (Unnatural) भोजनों में वे सब पदार्थ मौजूद रहते हैं जिनसे शरीर को हानि पहुँ

पची है और उनसे अन्त में रोग उत्पन्न होते हैं। अब प्रश्न यह होता है, कि कौन सा भोजन प्राकृतिक है।

यह प्रश्न वास्तव में वैज्ञानिक है। उसके उत्तर के लिए हमें (Inductive Method) (परीक्षा का मार्ग) काम में लाना पड़ेगा जिससे खास-खास उदाहरणों से व्यापक परिणाम निकाला जाता है। इस परीक्षा के हम तीन भाग कर सकते हैं।

(१) अनुभवों को इकट्ठा करें।

(२) उनके परिणाम निकालें।

(३) और परीक्षा करें।

अनुभव का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, और इसलिए प्रत्येक बात का अनुभव करना कठिन है इसलिए जिस प्रकार मनुष्य थोड़े ही भ्रमण से किसी देश के फल और फूलों के गुणों का ज्ञान लेता है, उसी प्रकार हम भी थोड़े से अनुभव से अपना मतलब सिद्ध कर लेंगे।

सृष्टि में दृष्टिपात करने से यह बात भलीभाँति विदित हो जाती है कि शरीर के काम को जारी रखने के लिए भोजन की आवश्यकता है। यद्यपि भोजन के चुनाव में पूरी स्वतन्त्रता नहीं है। जो वृक्ष समुद्र के किनारे हरा भरा रहता है वह जब देश के अन्दर लाया जाता है तो सूख जाता है। जो पेड़ मालूदार जमीन में पैदा होता है वह बाग में सूख जाता।

यही बात सब जीवों में पाई जाती है। अन्तर इतना है कि भोजन के अनुसार हम उनको श्रेणियों में बाँध सकते हैं। इस विचार से इनके दो भेद हैं। (१) मांस भोजी (२) और शाक भोजी, इनमें भी कई भेद हो सकते हैं। मांसाहारियों में मांस खानेवाले और दूसरे कोई खानेवाले। उसी प्रकार शाकाहारियों में घास पात खानेवाले और फल व मेवा खानेवाले। इसके अलावा कुछ ऐसे भी जानवर हैं जो मांसाहारी और शाकाहारी दोनों हैं।

हमारा अन्वेषण प्रत्येक प्रकार के जीवों के उन अवयवों में भी होना चाहिये जिनसे शरीर का भोजन के रस लेने में सहायता मिलती है। किसी जीव के अवयव या हड्डियों के ढाँचों से हम पता लगा सकते हैं कि वह मांसाहारी है या शाकाहारी। हम उनके दाँतों का पाकस्थली को भोजन तक पहुँचानेवाले उनकी इन्द्रियों का और उनके अपने अर्थों के मेयन विधि का निरीक्षण करेंगे।

दाँत तीन प्रकार के होते हैं, अर्थात् कुतरने के दाँत (Inci sors) कीले या कुत्ते के दाँत (Canine), और दाढ़ यानी पीसनेवाले दाँत (Molars)। मांसाहारी जानवरों के कुतरने वाले दाँत छोटे छोटे होते हैं और उनके कीले बहुत बड़े-बड़े होते हैं। ये और दाँतों से कहीं आगे निकले होते हैं और सामने की कतार में उनके चपककर बैठने का स्थान भी होता है। वे नोकीले, चिकन और कुछ तिरछे होते हैं। वे चबाने के योग्य नहीं होते किन्तु वे शिकार को पकड़ने और थामने के काम के होते हैं। भयानक मांसाहारी जीवों में इनको फैंग्स (Fangs) कहते हैं। पास के दाँत माँस को छोटे-छोटे टुकड़ों के काटने के काम में आते हैं और उनकी सतह नोकीली होती है। ये नोक मिलते नहीं बल्कि पास पास चपककर बैठ जाते हैं और चबाने की क्रिया में ये मांस के पट्ठों के रेशों को सर्वदा अलग अलग कर देते हैं। अब जबड़ों को लीजिये। यदि वे हिलाये जायें तो रुकावट पड़ती है। मांसाहारी जीव इस प्रकार भोजन को चबा नहीं सकते। इससे स्पष्ट है कि इस श्रेणी के जानवर भोजन को दाँतों से पीस नहीं सकते। यह बात हम कुत्तों में भलीभाँति देख सकते हैं। कुत्ते रोटी के टुकड़े को चबा नहीं सकते और इसी कारण वे बिना चबाई हुई रोटी निगल जाते हैं।

शाकाहारी जानवरों में काटनेवाले दाँतों की प्रधानता होती है और उनसे शाक-पात अच्छी तरह कुतरे जा सकते हैं।

इनके कीले प्राय छोटे होते हैं। दाढ़ ऊपर चौड़ी होती हैं और उनके अलग बगल रोगन-सा लिपटा हुआ होता है। शाक-पात के भोजन को पचाने में ये अच्छी तरह काम में लाये जा सकते हैं

पशुओं में फलाहारी बहुत नहीं हैं। हमारी खोज के लिए बंदर अत्यन्त आवश्यक हैं जो हमसे मिलते-जुलते हैं। फलाहारी जानवरों में सब दाँत समान रूप से बड़े होते हैं। सबकी ऊँचाई एक-सी होती है केवल कीले और दाँतों से कुछ अधिक निकले होते हैं। ये इतने नहीं निकले होते कि मांसाहारी जानवरों की तरह काम कर सकें। ये गावदुम और सिरे पर गोठिल होते हैं। ये चिकने नहीं होते और इस वास्ते शिकार को पकड़ने और थामने का काम नहीं कर सकते। इन जानवरों को दाढ़ों में चिकनाई होती है और चूँकि उनके नीचे जबड़ा इधर उधर खूब चल सकता है, इसलिए उनके दाँत चक्की के पाट की तरह पीसने का काम कर सकते हैं। एक दाढ़ भी नोकीली नहीं होती यह इस बात का प्रमाण है कि ये मांसाहारी नहीं हैं। जो पशु दोनों प्रकार के भोजन करते हैं यानी मांसाहारी और शाकाहारी हैं उनके कुछ दाढ़ नोकीले और कुछ चपटे होते हैं। भालू इसका एक उदाहरण है। रीछों के मांसाहारी पशुओं की तरह कीलें होते हैं जिनके बिना ये शिकार नहीं पकड़ सकते। उनके कुतरने वाले दाँत फलाहारी जीवों के सदृश होते हैं।

सवाल यह है कि इन दाँतों में से किसके दाँत आदमी के दाँतों से मिलते हैं। इसमें कोई शंका नहीं कि मनुष्य के दाँत फलाहारी पशुओं के दाँतों की तरह बने होते हैं। मनुष्यों के कीले इतने लम्बे नहीं होते जितने कि फलाहारी जीवों के और दूसरे दाँतों के आगे नहीं निकले रहते। मांस के पक्षपाती प्रायः कहा करते हैं कि कीलों का रहना ही यह सिद्ध करता है कि मनुष्य मांसाहारी है। यदि मनुष्य के कील यही काम कर

सकते जो मांसाहारी जानवरों के करते हैं या रीछों के सदृश थोड़े से पीछे के दाँत माँस फाड़ने के वास्ते होते तो उनका कथन सत्य हो सकता था। इन सब बातों का सार यह है —

(१) मनुष्य के दाँत मांसाहारी पशुओं से नहीं मिलते इसलिए वह मांसाहारी नहीं हैं।

(२) मनुष्य के दाँत शाक व घास खानेवाले जानवरों से नहीं मिलते इसलिए वह घास शाक खाने वाला जानवर नहीं है।

(३) मनुष्य के दाँत उन पशुओं की तरह नहीं हैं जो सब प्रकार के भोजन माँस, मेवा, शाक आदि खाते हैं इसलिए मनुष्य सब प्रकार के भोजन करने वाला जीव नहीं है।

(४) मनुष्य के दाँत फल खानेवाले उन बन्दरों से मिलते हैं जो मनुष्य के सदृश हैं इसलिए यह अधिक सम्भव है कि मनुष्य फल भक्षी प्राणी है।

माँस के पक्षवाले उपरोक्त सिद्धान्त का खण्डन इस प्रकार करते हैं दाँतों की परीक्षा से मनुष्य न माँसाहारी है और न शाकाहारी। वह दोनों के बीच का प्राणी है यानी वह माँस और फल दोनों खाने के लिए है। यह निर्णय तर्कशास्त्र के बिल्कुल विरुद्ध है। मध्य दशा का विचार वहाँ नहीं चल सकता, जहाँ वैज्ञानिक सबूत की आवश्यकता है। केवल गणित में ही मध्य की दशा ठीक समझ में आती है।

अब हम लोग जरा पशुओं के आमाशय की ओर विचार करें। मांस खानेवाले पशुओं का आमाशय (मेदा) छोटा और गोल होता है और आँतें शरीर से तिगुनी या पाँचगुनी लम्बी होती हैं, शाक-पात खानेवाले, विशेषकर जुगाली करनेवाला, पशुओं का पेट बड़ा और विधिपूर्वक बना होता है और उनकी अँतड़ियाँ शरीर से २० या २८ गुना लम्बी होती हैं। फलखाने वाले पशुओं की आँतें शरीर से १० या १२ गुना लम्बी होती हैं।

देह की चीड़ फाड़ की पुस्तकों में प्राय: कहा गया है कि मनुष्य की अँतड़ियों की लम्बाई उसके शरीर से तीन या पाँच गुना लम्बी है और इसीलिए वे माँस खाने के लिये अनुकूल हैं। ऐसा कहना माना प्रकृति को विरोधी ठहराना है। दाँतों के विचार से तो मांसाहारी पुरुषों के अनुसार मनुष्य को प्रकृति ने सर्वभक्षी बनाया और आँतों के विचार से मांसाहारी, प्रकृति के काम में इस प्रकार की दो बातें नहीं हो सकतीं। उपरोक्त उदाहरण में मनुष्य की लम्बाई सर से तलुवे तक ली गई है और वास्तव में अन्य दशाओं की तरह परीक्षा करने के लिए नाप केवल मुख से रीढ़ का हड्डी तक होनी चाहिए। मनुष्य की आँतों का लम्बाई २६ से २८ फीट तक उसके देह की लम्बाई के अनुसार हुआ करती है और देह की लम्बाई सिर से रीढ़ की अंतिम सीमा तक २॥ फीट से २॥ फीट तक है। इसका भाग देने से १० या ११ भजनफल होता है। अतः हम दूसरी बार इस निर्णय तक पहुँचते हैं कि मनुष्य फलाहारी है।

अब तीसरी परीक्षा की ओर आइये। इस विषय में हम अपनी इन्द्रियों से पूछें। नाक और रसना से ही प्रेरित होकर जानवर अपना भोजन खोजते हैं और खाते हैं, मांसाहारी पशु को जब अपने शिकार की महक मिलती है तो उसकी आँखें चमकने लगती हैं और वह बड़े चाव से उस गन्ध की ओर जाता है। वह अपने शिकार पर झपटता है और गरम-गरम खून पीता है। ऐसा करने में उसे बड़ा आनन्द होता है। शाक खानेवाला पशु इसके विरुद्ध अपने साथी पशुओं के पास जाता है और फाटने के लिए उसका जी नहीं चाहता। उसकी घ्राण इन्द्रियाँ मांस खाने के लिए उसको कभी प्रोत्साहित नहीं करतीं। यदि उसके स्वाभाविक भोजन में खून पड़ा हो तो वह उसे भी छोड़ देता है। उसकी आँखें और उसकी घ्राणेन्द्रिय उसे घास

पाव की ओर से जाती हैं और उसीसे उसकी तृप्ति होती है। फलाहारी जानवरों में भी यही बात देखने में आती है। उनकी इन्द्रियाँ उन्हें फल खान के लिए पेड़ों पर ले जाती हैं।

परन्तु मनुष्य की इन्द्रियाँ किस प्रकार काम करती हैं। क्या उसकी आँखें और उसकी घ्राणेन्द्रिय उस बकरे को मारने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। जिस बच्चे ने मांस खाया हो और किसी पशु को न मारा हो तो क्या किसी मोटे बकरे को देखकर यह कहेगा कि अरे यह बकरा मेरे लिए अच्छा भोजन होगा। जब हम उस जानदार पशु का और पकाये हुये मास का विचार करते हैं तब ही केवल ऐसे विचार उत्पन्न हो सकते हैं। प्रकृति की ओर से हमें ऐसे विचार नहीं मिलते।

वध करने का विचार ही हमारी इन्द्रियों को घृणित मालूम होता है और कचा मास न तो आँख को सोहाता है और न नाक को। कसाई-घर हमारे शहरों से दूर क्यों बनवाये जाते हैं? अनेक नगरों में इस बात के लिए कानून क्यों बनाये जाते हैं कि खुला हुआ मांस सड़कों से न गुजरे। ऐसा होते हुए क्या आप मांस को प्राकृतिक भोजन कह सकते हैं। नाक और जिह्वा को अच्छा लगे इसके लिए मास में नाना प्रकार के मसाले डाले जाते हैं। अभ्यास से नाक और जिह्वा मुर्दा हो जाती हैं और हम गपागप मास खाने लगते हैं। दूसरी ओर जरा देखिये। फलों की महक हमको कितनी बढ़िया मालूम होती है। फलों की प्रदर्शनी देखकर पत्रों के संवाददाता लिखा करते हैं कि 'फलों के देखने ही से मुँह में पानी भर आता है।' ऐसा होना कोई आकस्मिक घटना नहीं है। सब प्रकार के अन्न भी फल से बढ़ कर अच्छी महक निकालते हैं और कच्ची दशा में भी खाने में बड़े स्वादिष्ट होते हैं। अन्न के पकाने में किसी प्रकार की घृणा नहीं मालूम होती। अन्न का उत्पन्न

करनेवाला खेतिहर इसी वास्ते सन्तुष्ट और सुखी कहा गया है। इस तीसरी अवस्था से भी मनुष्य स्वभावतः फलाहारी निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

अब हम चौथी अवस्था को लेते हैं। सन्तानोत्पत्ति के लिए जो सृष्टि के नियम हैं, जब हम उनकी ओर देखते हैं तो हमें और भी अधिक कठिनता का सामना करना पड़ता है। जन्म लेते ही सब जानवरों को ऐसा भोजन मिलता है जो उनकी वृद्धि में सहायक होता है। नवजात शिशु के लिए माँ का दूध ही प्राकृतिक भोजन है, किन्तु बहुत-सी माताएँ अपने इस कर्तव्य का पालन करने में असमर्थ होती हैं, क्योंकि उनकी शारीरिक दशा दूध उत्पन्न करने के योग्य नहीं होती। यह देश का दुर्भाग्य है क्योंकि ऐसे बच्चों की इन्द्रियाँ प्रारम्भ से ही इतनी मजबूत नहीं होती कि व प्रत्येक इन्द्रियों के कार्य को पूर्ण रूप से ग्रहण कर सकें। कोई भी अप्राकृतिक भोजन प्राकृतिक भोजन का मुकाबला नहीं कर सकता। निरीक्षण से देखने में आता है कि अच्छे घरों की स्त्रियों में दूध मांस खाने के कारण नहीं होता इसलिए वे अपने बच्चों को दूध पिलाने के लिए दाइयों को ऐसे स्थान से बुलवाती हैं जहाँ मांस बहुत कम खाया जाता है। ये दाइयाँ भी समय पाकर मांस खाने लगती हैं और कुछ वर्षों में दूध पिलाने में वे भी अयोग्य हो जाती हैं। सामुद्रिक यात्रा में आटे की बनाई हुई लप्सी दूध पिलानेवाली स्त्रियों को दी जाती है, ताकि उनके स्तन का दूध न सूखे। इससे सिद्ध होता है कि मांस के भोजन से माँ क स्तन में दूध उत्पन्न होने में कुछ भी सहायता नहीं मिलती। अतः चौथी बार यह परिणाम निकलता है कि मनुष्य स्वभावतः फलाहारी प्राणी है।

यदि उपरोक्त दलीलें ठीक हैं तो यह मानना पड़ेगा कि

मनुष्य जाति का एक बहुत बड़ा भाग प्राकृतिक भोजन से न्यूनाधिक अलग हो गया है। प्रकृति की सन्तान अपने प्राकृतिक भोजन से अलग हो गयी है, इसके सुनने से बड़ा आश्चर्य मालूम होता है और इसके लिए अभी और सबूत की आवश्यकता प्रतीत होती है। क्या यह सम्भव है कि बचे बचाये प्राणी भी अपने स्वाभाविक भोजन को छोड़ सकते हैं? यदि वे छोड़ दें तो इसका क्या परिणाम होगा।

हम सब लोग भलीभाँति जानते हैं कि कुत्ते और बिल्लियों का शाक-पात के भोजन का अभ्यास डाला जा सकता है। किन्तु कभी क्या हमने ऐसा भी देखा है कि शाकाहार खाने वाले पशु मांसाहारी बन गये हों। किसी घर में एक पालतू हिरन था, उसकी दोस्ती उसी घर के एक कुत्ते से हो गई थी। वह प्राय कुत्ते को मांस का शोरबा पीते देखता था। धीरे धीरे उसने भी पीने का प्रयत्न किया। पहिले तो शोरबे को मुँह में लगाते हुए वह अपना मुँह अलग कर लेता था किन्तु धीरे धीरे उसका अभ्यास पड़ गया और वह उसे स्वाद से पीने लगा। कुछ सप्ताहों में वह जिस मांस से घृणा करता था उसे भी खाने लगा। परिणाम इसका यह हुआ कि हिरन बीमार पड़ गया और एक वर्ष का भी वह मुश्किल से हो पाया था कि मर गया। वह हिरण घर में बँधा नहीं रहता था बल्कि बाग में इधर उधर घूमता था।

फल खानेवाले बन्दरों को बाँधकर जबरदस्ती मांस खिलाया जा सकता है, किन्तु ऐसा करने से क्षयी रोग से पीड़ित होकर वे एक या दो वर्ष के भीतर मर जाया करते हैं। इस मृत्यु का कारण केवल अस्वाभाविक भोजन है। जो परीक्षायें हाल में की गई हैं, उनसे भी इस विचार की पुष्टि होती है। मनुष्य ज्यों-ज्यों प्राकृतिक भोजनों से अलग होते

जायेंगे त्यों-त्यों बीमारियाँ और भी अधिक बढ़ती जायेंगी।

कितने मनुष्य ऐसे हैं जिन्हें कभी भी जीवन में वैद्य व डाक्टर बुलाने की आवश्यकता न पड़ी हो। ऐसे पुरुष बहुत ही कम मिलेंगे। कितने पुरुष एसे होंगे जो वृद्ध होकर मरते हों। बहुत ही कम। तादाद इतनी कम हो गई है कि समाचार पत्रों को प्राय लिखना पड़ता है कि अमुक मनुष्य वृद्ध अवस्था में मरा। ऐसे बहुत कम आदमी मिलेंगे जो विजातीय-द्रव्य से थोड़ा बहुत लदे न हो। ग्रामीण भाई, यद्यपि वे प्रकृति के साथ बिल्कुल नहीं रहते, तथापि अधिक स्वस्थ होते हैं। स्वस्थ होने के लिए यद्यपि स्वच्छ वायु की अत्यन्त आवश्यकता है, तथापि भोजन का महत्व कुछ कम नहीं है। तबेले में रहने वाले पशुओं की हालत सफाई की दृष्टि से बड़ा खराब होती है। अपने मल से निकली हुई हवा में वे साँस लेते हैं और बँधे रहने के कारण चल फिर नहीं सकते। वे अन्त में बीमार हो जाते हैं और बीमार भी नहीं होते तो सदैव अस्वस्थ रहते हैं सफाई की इतनी हालत खराब होते हुये भी उनमें इतनी बीमारियाँ नहीं मिलतीं जितनी मनुष्यों में, जो पशुओं से अपनी रक्षा कहीं अधिक कर सकते हैं। इसका दोष खास कर भोजन पर है।

अब हम अन्तिम बात पर आते हैं और अपने परिणामों के स्वस्थास्वस्थ्य की परीक्षा प्रयोग द्वारा करना चाहते हैं। दो प्रश्न प्राय उठाये जाते हैं जिनकी जाँच करनी चाहिए। पहिला यह है कि शरीर व उच्च बनावट के कारण मनुष्य उन नियमों के आधीन नहीं है जो नीची श्रेणीवाले पशुओं के लिए हैं। दूसरा प्रश्न यह है कि बहुत दिनों से मांसाहार करने के कारण मनुष्य ने मांसाहार में अनुकूलता प्राप्त की है। दूसरे के दो भाग और हैं, प्रथम यह कि मनुष्य-जाति इस भोजन से प्रभा

चित हो गई है और दूसरे यह कि नवयुवक इस मांसाहार को विना शरीर को हानि पहुँचाये नहीं छोड़ सकते।

बहुत से घरानो में विना मांस के बच्चों का पालन हुआ है। ऐसा होने से उन्होंने शारीरिक और मानसिक बहुत काफी उन्नति की है। ये सदाचारी और साहसी भी अधिक मात्रा में देखने में आये हैं। बच्चों के पालने के सम्बन्ध में सदाचार की अत्यन्त आवश्यकता है। आजकल हर समुदाय में सदाचार की काफी चर्चा होती है। सदाचार का घोर शत्रु कौन है ? धार्मिक गुरुओं और बाबा पुरोहितों से पूछिए। वे यही कहते हैं कि सदाचार के घोर शत्रु कामचेष्टायें हैं। अप्राकृतिक दवाओं द्वारा इन चेष्टाओं को दमन करने के लिए असाधारण कष्ट उठाये जाते हैं, पुरुषों से उपवास करवाये जाते हैं। एक स्थान में लोग बाँधकर रक्खे जाते हैं, किसी से मिलने नहीं पाते किन्तु सदाचार पर इनका बहुत कम असर पड़ता है। काम चेष्टायें शुरू से ही न उठने पावें तो सदाचार आप से आप अच्छा होगा। कामचेष्टाओं के न उठने देने का मुख्य कारण यह है कि बच्चों को शुरू से अनुत्तेजक और प्राकृतिक पदार्थ खाने को दिये जायँ। इन बातों की सत्यता परीक्षाओं से सिद्ध हो चुकी है। इसपर जितना कहा जाय, थोड़ा है।

काम चेष्टाओं से मुक्त होना और मानसिक शक्ति का प्राप्त करना इन दो बातों से मन की शिक्षा बहुत अच्छी होती है। प्रत्येक आत्मज्ञानी को मालूम है कि सन्तोष या शान्ति अपने विचारों और विवेक के लिये सब से अधिक लाभकारी है और शान्ति केवल शाकाहार ही से मिल सकती है, दूसरे किसी उपाय से नहीं।

अभी उन प्रयोगों पर विचार करना बाकी है जो नवयुवकों पर किये गये हैं। हम और हमारे साथी उसी पथ के अनुगामी

हैं और जो लाभ हमको हुए हैं वह हम वर्णन नहीं कर सकते। इस समय जो बहुत से फलाहारी हैं, वे किसी समय भयानक रोग से आक्रान्त हुए थे और अच्छा होने पर उन्होंने जन्म भर शाकाहारी होने का प्रण लिया है। ऐसा करने से वे स्वयं कहते हैं कि पहले से जब हम माँस खाया करते थे इस समय हमारा स्वास्थ्य कहीं अच्छे हैं। वे बहुत मोटे तो नहीं हुये लेकिन स्वस्थ जरूर हो गये हैं। थियोडोर हान साहब (Theodor Hahn)१८ वर्ष की अवस्था में इतने बीमार पड़े कि डाक्टरों ने कहा कि इनका बचना असंभव है। प्राकृतिक भोजन से उनका स्वास्थ्य साधारणतया अच्छा हो गया और वे तीस वर्ष तक और जीवित रहे।

जल-चिकित्सा ने जिसमें बिना औषधि और बिना चीड़फाड़ के चिकित्सा होती है, सिद्ध कर दिया है कि अनुत्तेजक-स्वाभाविक भोजन से कोई भी रोग दूर किये जा सकते हैं। जो मांस और शराब नहीं छोड़ सकते उनका अच्छा होना कठिन है, क्योंकि वे शरीर में अपने खान पान से नित्यप्रति विजातीय द्रव्य भरते जाते हैं। जिसका बाहर निकालना अत्यन्त आवश्यक है। अतः रोग उत्पन्न होने की जड़ कभी नहीं जाती।

जो लोग भले चंगे हैं वे इस फालतू बोझ को टाँगे रह सकते हैं किन्तु इससे उनको हानि है। जिसको स्वस्थ रहना है उसे शरीर से अपने विजातीय-द्रव्य को निकालना पड़ेगा और शाकाहार द्वारा शारीरिक शक्ति प्राप्त करना होगा।

अब प्रश्न यह है कि हम क्या खायें और क्या पियें? शराब के विषय में एक बार हम अपने ख्याल को फिर दौड़ायें। सिवाय मनुष्य के कोई भी पशु पानी के अलावा और किसी पेय पदार्थ से अपनी प्यास नहीं बुझाता। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जानवर गड्ढों या तालाबों की अपेक्षा सदैव बहते हुये नाले या बहती हुई नदियों में पानी पीना अधिक पसन्द

करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस बहते हुए पानी में सूर्य की किरणें पड़ती हैं और जो पत्थरों व चट्टानों में होकर बहता हो वह सबसे श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त जो पशु रसदार भोजन करते हैं वे पानी कम पीते हैं और यदि रसदार फलों का सेवन मनुष्य भी भोजन के साथ करे तो उसे भी प्यास कम लगे। किन्तु यदि उसे प्यास लगती है तो शुद्ध पानी ही उसका पेय पदार्थ है। फलों के शरबत में खूब चीनी डालकर पीना भी अच्छा नहीं है। यदि हम बीमारियों से दूर रहना चाहते हैं तो प्रकृति देवी के दिए हुए केवल जल का ही इस्तेमाल करें।

हमें क्या खाना चाहिये ?

प्रकृति फलों की ओर इशारा करती है और इसलिए फलाहार सर्वोत्तम है। सब प्रकार के अन्न, सब प्रकार के फल व मेवे, सब प्रकार के कन्द मूल, जो आँखों को, नाक को और रसना को अच्छे लगें, खाने के योग्य हैं। अत्यन्त शीत प्रदेशों को छोड़कर पृथ्वी के अन्य भागों में ऐसे पदार्थ बहुतायत से मिलते हैं। अत्यन्त शीत प्रधान देश वास्तव में मनुष्य के निवास स्थान नहीं है। जो रहते हैं वे छोटे कद के होते हैं और उनके दिमाग भी गिरे हुए होते हैं।

जहाँ तक हो सके प्रकृति की दी हुई वस्तुओं को उनकी असली दशा में खाना उचित है। हमारे स्वास्थ्य चूँकि वर्षों से गिरे हुए हैं इसलिए असली दशा में उनका खाना कठिन है। तेज मसाले और सम्भव हो तो मीठा व नमक भोजन में न डालना चाहिये।

आजकल भोजन के पकाने का ढङ्ग खराब हो गया है। तरकारियों में जो पानी डाला जाता है वह जब उबलने लगता है तो उसमें न मालूम कितने गुणकारी तत्व मिल जाते हैं,

किन्तु यह पानी फेंक दिया जाता है और उबाली तरकारी हमारे सामने रख दी जाती है। यह हमारी भूल है, तरकारियों को उतने ही पानी में उबालना चाहिये जितना पानी उनमें सोख जाय। मसाला बिल्कुल न डालना चाहिए। जैसा कहा जा चुका है नमक भी न डाला जाय तो अच्छा है।

खराब आमाशय स्वस्थ आमाशय की तरह भोजन नहीं पचा सकता। वह स्वयं बता देता है कि मेरे लिए कितने भोजन की आवश्यकता है। जब डकार आने लगे, या पेट में दर्द होने लगे या हवा खुलने लगे, मुख का स्वाद खट्टा हो या किसी भी प्रकार की गड़बड़ी पेट में पैदा हो तो समझ लेना चाहिये कि या तो हमने अधिक खा लिया है या अनुपयुक्त भोजन किया है। रोगी यदि सावधान हो तो उसे मालूम हो जायगा कि मेरे लिए कौन भोजन सब से अच्छा है। मोटे आटे की रोटी यदि चबा चबा कर खाई जाय तो वह सबसे उत्तम भोजन है। यदि वह न पच सके तो बिना छने गेहूँ का आटा खाया जा सकता है क्योंकि जब वह थूक में अच्छी तरह मिल जायगा तभी वह पेट में जा सकेगा और इसे कोई अधिक भी नहीं खा सकता। इसलिए रोगी को इसे खाने से डरना नहीं चाहिए। रोगी को बहुत हलका और जल्द पचनेवाला भोजन करना चाहिये। यदि रोगी बार-बार भोजन करे तो हल्के से हल्का भोजन भी उसे हानि पहुँचा सकता है।

बीमार के लिए जड़ की लस्सी सब से उत्तम भोजन है। उसे दूध बिना उबाला और ठंढा पीना चाहिए। यदि वह महकता हो या खट्टा हो गया हो तो उसे नहीं पीना चाहिए। आप सोचते होंगे कि खौलाने से दूध सुपाच्य हो जाता है। ऐसा नहीं होता। उबाला हुआ दूध देर में पचता है क्योंकि पेट में वह देर में सड़ता है और उबालने से हानिकारक पदार्थ उसमें से निकल नहीं सकते

किन्तु उसी में रह जाते हैं। उसकी बल प्रदान करनेवाली शक्ति कम हो जाती है और शरीर मोटा बनकर फफक्स हो जाता है। भोजन के साथ ताजे फल खाने चाहिये। यदि भोजन बदलने का जी चाहे तो कभी चावल, कभी जई और कभी गेहूँ हरी-हरी तरकारियों के साथ खा सकते हैं। जो मनुष्य स्वस्थ हैं उनके लिये नाना प्रकार के प्राकृतिक पदार्थ खाने को प्राप्त हो सकते हैं।

जो सज्जन बीमार हैं या जिनका आमाशय कमजोर है उन्हें बहुत सादा भोजन कुचल कुचलकर करना चाहिये। उन्हें टी और फल खाना चाहिये। जब तक उनका हाजमा दुरुस्त न हो तब तक स्वाद के वशीभूत होकर गरिष्ठ भोजन न कर लेना चाहिए।

कोई साहब पूछना चाहेंगे कि क्या इस भोजन में कुछ स्वाद भी है। खाने में स्वाद कहाँ से आता है। स्वाद तो जिह्वा से मालूम होता है, यह उसकी चीज है। स्वाद से और स्वास्थ्य प्रदान करने वाले भोजन से क्या सम्बन्ध। जो चीजें हम बार-बार खाते हैं, वास्तव में वही हमारे स्वाद की चीजें हो जाती हैं। जिन चीजों में आज स्वाद नहीं होता वे ही अभ्यास से स्वादिष्ट हो जाती हैं। अतएव स्वाद के प्रश्न को तो हमें उठाना ही नहीं चाहिए।

अप्राकृतिक भोजन से शरीर में विजातीय-द्रव्य उत्पन्न होता है और प्राकृतिक भोजन से नहीं होता। यदि एक बार हम अपने शरीर से विजातीय-द्रव्य निकाल डालें और फिर हमेशा प्राकृतिक भोजन करें और साथ ही रहन-सहन का भी ख्याल रक्खें तो हम पूर्ण स्वस्थ रह सकते हैं।

११—कुछ भोजन प्रकार

प्राय लोग पूछते हैं कि हमें कितना भोजन करना चाहिए

और कम भोजन करना चाहिए। कितना भोजन किसको करना चाहिए, यह बतलाना कठिन है क्योंकि सब की पाचन-शक्ति एक सी नहीं होती। जिसकी पाचन-शक्ति मन्द है उसे कम खाना चाहिए और जिसकी पाचन-शक्ति अच्छी है उसे अधिक खाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त भोजन की मात्रा बहुत कुछ मनुष्य के काम पर भी निर्भर है। जिनको शारीरिक परिश्रम अधिक करना पड़ता है, जैसे मजदूर आदि, उन्हें भोजन अधिक चाहिए। किन्तु जिन्हें मानसिक काम अधिक करना पड़ता है और शारीरिक काम कम जैसे लेखक, क्लर्क इत्यादि, उन्हें भोजन कम करना चाहिये। हर एक पुरुष को प्रयोग करके देख लेना चाहिए कि कितना भोजन वह पचा सकता है और उतना ही उसके लिए काफी होना चाहिए।

भोजन तीन बार करना चाहिये, प्रातः ७ बजे हल्का जल पान, १२ बजे भोजन और सायङ्काल ७ बजे ब्यालू। जलपान में बिना छने आटे की रोटियाँ और फल या बिना उबाला हुआ दूध। दोपहर के भोजन में ताजा फल, बिना छने आटे की रोटी या दलिया और छिलकेदार दाल या रोटी और दाल, या भात और दाल। उबाली तरकारी साथ में अवश्य होनी चाहिये। सायङ्काल के भोजन में बिना छने आटे की रोटी, फल और तरकारी या गाढ़ी पकी हुई लप्सी और फल।

भोजन के कुछ नुसखे

रोटी बनाना—

हिन्दुस्तानियों के लिये रोटी बनाने की तरकीब बतलाना निरर्थक मालूम होता है। लुइ कूने ने तन्दूर में रोटी सेंकने की तरकीब लिखी है किन्तु हमारे घरों की बनी हुई रोटी उस

रोटी से कम आवश्यक नहीं है। ख्याल इस बात का रखना चाहिए कि रोटी सेंक खूब ली जाय और जलने न पावे। बिना छने हुए चोकरदार आटे को कम से कम एक घन्टे तक पानी में भीगते रखना चाहिए।

आटे की लप्सी—

एक बड़ा चम्मच भर बिना छना हुआ आटा ले लीजिये और एक कटोरे में ठंडा पानी डालकर उसी में आटा छोड़कर लेई बना लीजिए। फिर उसे खौलते हुए पानी में डालकर कुछ समय तक पकने दीजिए। उसको बराबर चलाते जाइए। यदि आवश्यकता समझिए तो थोड़ा-सा घी और नमक मिला दीजिए। तबीयत हो तो नमक की जगह कुछ मुनक्के या किसमिस डाल दीजिए, यह लप्सी खाने में बड़ी स्वादिष्ट मालूम होती है।

करमकल्ला और सेब की तरकारी—

कमरकल्ले या बन्द गोभी को धोकर उसके टुकड़े टुकड़े कर लीजिए। फिर उसे आधे प्याले पानी में उबालिए। जब वह आधा पक जाय तो सेब के टुकड़े काटकर उसमें डाल दीजिए और थोड़ी देर उसे पकने दीजिए। उसमें थोड़ा-सा नमक और घृत भी डाल दीजिए।

करमकल्ला और टमाटर—

उपरोक्त तरीके से करमकल्ले को काटकर अधपका बना लिए। फिर ताजे टमाटरों का रस उसमें डाल दीजिए। यदि जी चाहे तो थोड़ा-सा आलू भी काटकर डाल दीजिए। नमक और घी भी थोड़ा-सा डाल दीजिए। बढ़िया स्वादिष्ट तरकारी बन जायगी।

सोया, बथुआ, पालक और आलू—

शाकों का कूड़ा-कर्कट निकालकर उसे दो तीन बार पानी से

धोइये। इसके बाद बहुत थोड़ा पानी डालकर उबालने के लिए रख दीजिये। कुछ उबलन पर आलू काटकर डाल दीजिए। थोड़ा नमक और घी भी डाल दीजिए।

गाजर और आलू—

गाजर को काटकर थोड़े पानी में उबालिए। और फिर आलू क टुकड़े काटकर डाल दीजिए। थोड़ा घी और नमक भी डालिए।

चावल और सेब—

पाव भर चावल और ५, ७ कटे हुये सेब सब तीन चार प्याले पानी में उबाल कर खिचड़ी ऐसा बना लीजिए। उसमें थोड़ा-सा घी और नमक डाल दीजिए। इतना तीन आदमियों क लिए काफी है। ऐसा भात बड़ा ही स्वादिष्ट होता है।

लोबिया और टमाटर—

पाव भर लोबिया संध्या समय ठंडे पानी में भिगा देना चाहिए। और प्रात काल काफी पानी डालकर उबालिए। जब आधा पक जाय तो आधा कटोरा टमाटर का रस निकाल कर उसमें डाल दीजिए। थोड़ा-सा नमक और घी डाल दीजिए। यदि पानी अधिक रह जाय तो एक चम्मच आटा उसमें डाल दीजिए। इतना दो मनुष्यों क लिए काफी होगा।

हर सम और सब—

सम का सूत निकाल कर उसको कतर लीजिए। खौलते हुए पाना में उसे फिर डाल दीजिए। इसके पश्चात् कुछ सब काट कर डाल दीजिए। थोड़ा-सा घी और नमक भी डालिए। यदि कुछ पतला हो तो थोड़ा-सा आटा डाल दीजिए।

मसूर और आलू बुखारा—

पाव भर मसूर सायङ्काल पानी में भिगो दीजिए और धीमी आँच में उबालिये। उसमें ३० आलूबुखारे और काफी पानी

डालिए। यदि आवश्यकता हो तो थोड़ा-सा नमक और घी डालिए। इतना सामान तीन आदमियों के लिए काफी होगा।

चुकन्दर की चटनी—

चुकन्दर को धोकर उसे आँच से नरम कर लीजिए। उसके फिर टुकड़े-टुकड़े करके नींबू के रस में डाल दीजिए। बहुत बढ़िया चटनी तैयार हो जायगी।

आलू और सेब की चटनी—

आलू को उबालकर उनके छिलके उतार लीजिए और उनके टुकड़े कर लीजिए। उसी प्रकार थोड़े सेब के भी टुकड़े कर लीजिये। दोनों को मिला दीजिए और थोड़ा सा तेल और नींबू का रस डाल दीजिए।

१२—जल-चिकित्सा करने वालों के लिए कुछ विशेष बातें

(१) सबसे पहिले यह बात आवश्यक है कि जल-चिकित्सा में आपका विश्वास हो। इस विषय की पुस्तकें पढ़कर आप अपनी धारणा पक्की कर लीजिए कि जल चिकित्सा से सब रोग दूर हो सकते हैं और फिर जल-चिकित्सा शुरू कीजिए।

(२) किसी एलोपैथिक डाक्टर की राय जल-चिकित्सा करने के लिए आप न लीजिये। एलोपैथी-चिकित्सा और जल चिकित्सा में जमीन आसमान का अन्तर है, डाक्टर अधिकतर जल चिकित्सा की ओर से निरुत्साहित करेंगे।

(३) साधारणतया सब प्रकार के रोगों में स्नान करने की विधि एक ही है। हरेक रोगी को कम से कम एक हिप बाथ और सिट्ज बाथ लेना चाहिए। आवश्यकतानुसार स्नानों की संख्या बढ़ाई जा सकती है।

(४) चिकित्सा के प्रारम्भ में प्रातःकाल और सायङ्काल

एक एक हिप बाथ एक सप्ताह तक लेना चाहिए। प्रथम ८, १० मिनट से शुरू करें और फिर शक्ति के अनुसार करना चाहिए।

५) एक सप्ताह के पश्चात् प्रातःकाल सिट्ज बाथ और सायङ्काल हिप बाथ लेना चाहिए। सिट्ज बाथ पहिले १० १२ मिनट तक करना चाहिए उसके बाद बढ़ाकर २५ मिनट से ३० मिनट तक कर दिया जाय।

(६) रोगी का प्रति सप्ताह चिकित्सा के शुरू में पूरे शरीर का स्टीम बाथ देना चाहिए। विशेषकर उन लोगों को जिनके शरीर विजातीय-द्रव्य के कारण अधिक मोटे हो गये हों। निर्बल पुरुषों को १५ मिनट का और सबल को २० मिनट का स्टीम बाथ काफी होगा।

(७) स्टीम बाथ के बाद सिट्ज बाथ या हिप बाथ का लेना अत्यन्त आवश्यक है।

(८) पृथक-पृथक अंग के यानी स्थानिक स्टीम बाथ किसी भी समय लिये जा सकते हैं। कभी कभी सन बाथ भी लेना चाहिए।

(९) स्नानों के बाद शरीर में गरमी लाना अत्यन्त आवश्यक है। सबल पुरुषों को खुली हवा में खूब टहलना चाहिए और कमजोर पुरुषों को कम्बल और रजाई ओढ़कर चारपाई पर लेट रहना चाहिए।

(१०) खाना खाने के दो या तीन घंटे बाद हिप या सिट्ज बाथ लेना चाहिए, तुरन्त ही न लेना चाहिए। उसी प्रकार स्नान करने के एक घंटे बाद भोजन करना चाहिए, उसके पहिले नहीं।

(११) तीन चार सप्ताह चिकित्सा करने के अनन्तर निर्बल पुरुषों को ४, ५ रोज तक चिकित्सा बन्द कर देना चाहिए लेकिन उनके भोजन का नियम वही होना चाहिए। सबल पुरुष भी दो या तीन दिनों के लिए बन्द कर दें तो अच्छा है।

(१२) स्त्रियों को मासिक धर्म के समय चार रोज तक बाथ न लेना चाहिए।

(१३) कठिन से कठिन कब्ज जब मनुष्य को हो गया हो। तो पेड़ू में मिट्टी की गद्दी बाँधना अत्यन्त लाभकारी है।

(१४) फोड़े, फुन्सी, सूजन की हालत में ठंडे जल की गद्दी रखना अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है। जल की गद्दी के ऊपर ऊन से बाँधना अत्यन्त आवश्यक है।

(१५) चिकित्सा के साथ भोजन में परहेज करना परमावश्यक है। बिना परहेज के जल चिकित्सा से पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता।

(१६) चिकित्सा के प्रारम्भ में घी और दूध छोड़ देना चाहिए। एक सप्ताह के लिए नमक भी छोड़ देना चाहिए। जब शक्ति कुछ आ जावे तो बहुत थोड़ा घी खाया जा सकता है और थोड़ा दूध भी पिया जा सकता है।

(१७) कच्चा दूध सबसे गुणकारी है। अघौटा दूध सर्वथा त्याज्य है। यदि कच्चा दूध न पिया जा सके तो थोड़ा पानी डालकर उसे एक दो उबाल दे देना चाहिए, दूध में चीनी नहीं डालनी चाहिए ।

(१८) मसाले जल-चिकित्सा में एकदम मना हैं। यदि काम न चले तो केवल जीरा, धनियाँ, थोड़ा-सा सौंफ काम में लाया जा सकता है।

(१९) जो भोजन कम से कम समय में पच सके वही भोजन रोगी को देना चाहिए।

(२०) रोगी को भोजन उतना ही करना चाहिए जितना वह पचा सके।

(२१) रोटी बिना छाने आटे की होनी चाहिये। उसी प्रकार भात भी माँड सहित खाना चाहिये।

(२२) सब प्रकार के शाक जैसे पालक इत्यादि रोगी के लिए अत्यन्त गुणकारी हैं, उसी प्रकार लौकी और परवल भी अत्यन्त गुणकारी हैं, सब प्रकार की तरकारियों को उबालकर खाना चाहिये। भूनकर नहीं, उबालने में यदि पानी बच जाय तो उसी तरकारी में ही सोखा देना चाहिये, निकालकर फेंक नहीं देना चाहिये।

(२३) झोलदार पदार्थ से ठोस भोजन अच्छा है। क्योंकि झोलदार भोजन को पचाने में आमाशय को अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

(२४) रोगी को बहुत हलका भोजन करना चाहिए, ठूँस ठूँसकर नहीं खाना चाहिये और भोजन को खूब चबा-चबाकर खाना चाहिये।

(२५) चाय, कहवा एक दम न पीना चाहिये। पान और तम्बाकू भी खाना मना है। यदि काम न चले तो दिन रात में दो तीन बीड़ पान खाये जा सकते हैं, किन्तु हर बार पहिली पीक थूक देना चाहिये।

(२६) चिकित्सा के समय मानसिक काम अधिक न करना चाहिये।

(२७) रात को ६ बजे रोगी को सो जाना चाहिय और प्रातःकाल ४ बजे उठना चाहिये।

(२८) चिकित्सा के समय स्त्री प्रसंग नहीं करना चाहिये। यदि तबियत न माने तो दो सप्ताह में एक बार स्त्री प्रसंग किया जा सकता है। स्वस्थ पुरुषों के लिए पन्द्रह रोज में एक बार स्त्री प्रसंग बहुत काफी है।

(२६) जल चिकित्सा के समय प्रायः रोग का उभार होता है जिसे अंगरेजी में (crisis) कहते हैं। यह क्षण स्थायी होता है इसलिए इससे घबड़ाकर चिकित्सा न छोड़ देना चाहिये।

१३—सब प्रकार के रोग और उनके उपचार

१—घावों की चिकित्सा

आजकल लोगों का यह विश्वास है कि शरीर के सब प्रकार के घाव केवल चीर फाड़ से ही अच्छे हो सकते हैं। हो सकता है किन्तु कभी कभी चीर-फाड़ में बहुत खतरा रहता है। उचित सावधानी न होने से बहुत से रोगी मर जाते हैं। किन्तु जल-चिकित्सा एक ऐसी औषधि है जिससे भयंकर घाव बड़ी आसानी से अच्छे हो सकते हैं।

चीर-फाड़ में बड़ी तकलीफ होती है जिसका अनुभव केवल रोगी को ही होता है। साथ ही इससे यदि घाव सकुशल पूर गया तो एक बड़ा निशान पड़ जाता है जो शरीर को भद्दा बनाता है। किन्तु जल-चिकित्सा में न तो किसी प्रकार की पीड़ा होती है और न कोई निशान ही पड़ता है।

जब कभी शरीर का कोई हिस्सा कट जाता है या जल जाता है या कहीं पर कोई शस्त्र भोंक दिया जाता है तो उससे स्नायुओं को झटका लगता है और खून का बहाव चोट खाये हुए हिस्से की ओर वेग से बढ़ता है। उस समय खून के साथ शरीर के अन्दर का विजातीय द्रव्य भी बाहर निकलता है। यदि हम उसमें प्राकृतिक सहायता पहुँचा दें तो बिना किसी पीड़ा के घाव पूर जायगा।

घाव में पीड़ा उसी समय उत्पन्न होती है जब वह पूरने लगता है। घाव से थोड़ा सा स्थानिक ज्वर भी हो जाता है। अतएव पहले हमें उस ज्वर को शांत करना चाहिये ताकि स्थानिक ज्वर से सारे शरीर में ज्वर न हो जाय। यदि हम ज्वर को रोक लें तो पीड़ा आप से आप दूर हो जायगी।

स्वस्थ आदमी के घाव जल्द पूरते हैं किन्तु जिनके शरीर विजातीय-द्रव्य से भरे हुए हैं उनके घाव देर से पूरते हैं।

पशुओं के घाव अल्प काल में ही सूख जाते हैं। उनकी औषधि प्रकृति करती है। मनुष्य के घावों को भी प्रकृति अच्छा कर सकती है यदि वे उसको न छुयें। उनके घाव वास्तव में अनावश्यक छेड़-छाड़ से खराब हो जाते हैं।

एक बिल्ली जाल में फँस गई थी। उसकी दाहिनी टाँग टूट गई। वह टाँग को फन्दे से बाहर निकालती रही जिससे कि उसके घाव में मिट्टी और तिनके जमा हो गये। जब वह जाल से छूटी तो इधर उधर टूटी हुई टाँग लिए खुली हवा में घूमती रही। कुछ दिन तक उसका पता न चला और लोगों ने समझा कि वह मर गई। एक हफ्ते के बाद वह बिल्ली एक अस्तबल में देखी गई। उसका पैर भर गया था किन्तु जहाँ हड्डी टूटी थी वहाँ सूजन बाकी थी। उसके शरीर से मालूम होता था कि एक सप्ताह से उसने भोजन नहीं किया था। उसके सामने बढ़िया भोजन रक्खा गया परन्तु उसने छुआ तक नहीं। वह केवल घाव को चाटती थी। भोजन छोड़ने से शरीर के अन्दर उसकी गरमी शान्त हो गई थी जिससे घाव के भरने में उसे बड़ी सहायता मिली थी।

कुछ समय बाद बिल्ली सूख कर काँटा हो गई किन्तु उसका पैर बिल्कुल ठीक हो गया। अब बिल्ली दूध पीने लगी और धीरे धीरे उसने अपना भोजन बढ़ाना शुरू किया। एक महीने में वह एक दम अच्छी हो गई।

इस उदाहरण से यह बात सिद्ध होती है कि स्नानों के लेने और भोजन को एकदम छोड़ने या थोड़ा भोजन करने से घाव बहुत जल्द अच्छे होते हैं।

जब कि शरीर में घाव किसी प्रकार हो जाता है तो रुधिर

की बड़ी और छोटी नलियाँ भीतरी दबाव के कारण अपना खून उस समय तक बाहर फेंकती हैं, जब तक कि भीतर और बाहर के दबाव में समानता नहीं आ जाती। जिस समय हम पहाड़ पर चढ़ते हैं तो बहुत ऊँचाई पर वायुमंडल का दबाव इतना कम हो जाता है कि मुँह से, नाक से, आँख से और कान से खून बहने लगता है। जिस समय भीतरी और बाहरी दबाव में समता हो जाती है तो खून निकलना बन्द हो जाता है। जब शरीर में घाव लगता है तो वह रुकावटों से विमुख हो जाता है जो रुकावटें खून को दबाये रहती हैं और इसलिए घाव लगते ही खून बाहर निकलने लगता है। सबसे पहले रुधिर को बन्द कर देना चाहिये।

घाव को कपड़े से कई तह से और भिगोकर उससे लपेट देना चाहिये। यदि संभव हो सके तो कटे हुए हिस्से को पानी के अन्दर डुबाये रहना चाहिये जब तक कि दर्द दूर न हो जाय। यदि पानी के अन्दर न डुबोया जा सके तो उसके ऊपर बूँद-बूँद पानी डालते रहना चाहिये। छोटे घावों के लिए पट्टी के दो चार या छ तह काफी हैं किन्तु बड़े घावों के लिए २० से ३० तह तक की गद्दी रक्खी जा सकती है। अगर गद्दी पतली हुई तो खून नहीं बन्द होगा। उसी तरह गद्दी का एक दम बहुत मोटा होना भी अच्छा नहीं होता।

कपड़े की गद्दी की तह इस प्रकार करनी चाहिये कि वह घाव के चारों ओर एक-एक इञ्च बाहर निकली रहे। इससे घाव के चारों ओर के हिस्से के खून के दौरान में किसी प्रकार की रुकावट न उत्पन्न होगी, पानी की गद्दी के ऊपर ऊन का कपड़ा लपेटना चाहिए। जब दर्द फिर मालूम होने लगे तो यह समझना चाहिए कि भीतर की गद्दी सूख गई है। इसलिए घाव

की, किन्तु उसने कोई लाभ न हुआ। अन्त में यह कूने साहब के पास गया। कूने साहब ने ठंडे पानी से घावों को धाकर उनपर जल की गद्दियाँ रख दीं। दो घंटो में जलन कम हो गई। दो दिन के बाद घावों को रंगत एकदम बदल गई। पाँच दिन में यह रोगी अपने काम पर आने लगा।

बन्दूक की गोली के घाव—

गोली के घावों की चिकित्सा भी उसी प्रकार होती है जिस प्रकार कि अन्य घावों की। इसका सम्बन्ध लड़ाई से है। अतएव हर एक सिपाही को जानना उचित है घायल को सहायता पहुँचाने के लिए पहले क्या करना चाहिए। कुछ लोगों का कहना है कि गोली पहले निकाल लेना चाहिए, क्योंकि यदि वह शरीर में रह गई तो शरीर को हानि पहुँचाने का भय रहता है। इस गोली के निकालने में बहुत अधिक चीर फाड़ की आवश्यकता होती है। गोली उतनी भयानक नहीं होती जितना भयानक गोली के निकालने में शरीर का चीरा हुआ भाग होता है। जल-चिकित्सा में इस गोली को निकालने के लिए चीर-फाड़ की जरूरत नहीं है। प्रकृति आप से आप उसे किसी न किसी समय निकाल देगी।

अतएव गोली की तरफ से ध्यान हटाकर घाव के जलन को बन्द करने की ओर ध्यान लगाना चाहिए। पानी में धोकर पानी की गद्दी उस पर बाँध देना चाहिए। हर-एक सिपाही को कुछ थोड़ा-सा कपड़ा या मिट्टी अपने पास रखना चाहिए। जिस सिपाही को जिस समय घाव लगे उसे अपनी चिकित्सा उसी समय स्वयं करनी चाहिए।

१८८३ में एक सज्जन कूने साहब के पास गये, जिनके पेट में सन् १८७० ई० की लड़ाई में एक गोली लगी थी। गोली निकाल ली गई थी किन्तु घाव नहीं पूरा था। १३ वर्ष तक उसमें मवाद

कुछ न कुछ निकलता रहा और रोगी की दशा दिन ब दिन खराब होती गई। कूने साहब ने उसके चेहरे को देखकर यह निष्कर्ष निकाला कि इतने वर्षों तक घाव न पूरने का कारण वह विजातीय-द्रव्य था जो उसके शरीर के भीतर भरा हुआ था। कूने साहब ने उसको स्टीमबाथ और साथ ही साथ हिप बाथ और सिट्ज बाथ दिये और रोगी भोजन भी स्वाभाविक करने लगा। एक सप्ताह के भीतर रोगी के घाव से मवाद का निकलना बन्द हो गया। उसने कुछ समय तक जल चिकित्सा जारी रक्खी और अन्त में वह बिलकुल चंगा हो गया।

हड्डियों का टूटना—

तीन बरस के एक सज्जन के दाहिने हाथ का ऊपरी भाग कोहिनी के पास टूट गया। उसने ठंडे पानी से तुरन्त धोकर उस पर पानी की गद्दी बाँध दी। कूने साहब के आदेशानुसार उसने कागज़ के पट्ठों की तख्तियों में हाथ को बाँध दिया और उस पर भीगी गद्दी रक्खा गया। साथ-साथ उसने हिप बाथ और सिट्ज़बाथ लिए और स्वाभाविक भोजन किया। चौबीस घन्टे में उसका दर्द और सूजन एक दम जाते रहे। तीन सप्ताह में टूटी हुई हड्डी बिलकुल ठीक हो गई।

खुले घाव—

गहरे कटे घाव, नोकदार शस्त्रों के भोंकने के घाव बड़ी आसानी से जल चिकित्सा द्वारा भरते हैं। डाक्टर लोग उनको चाहे जितने नाम से पुकारें किन्तु वे सब एक ही वस्तु हैं और ये यही सिद्ध करते हैं कि शरीर सड़ रहा है। दवा द्वारा जो घाव अच्छे किये जाते हैं वे वास्तव में अच्छे नहीं होते। समय पाकर शरीर के दूसरे हिस्सों में फूट निकलते हैं। बहते हुए घाव इस बात को साबित करते हैं कि शरीर के अंदर पुराने रोग मौजूद हैं। यह शरीर क भीतर संचित विजातीय-द्रव्य के कारण

उत्पन्न होते हैं। ये उन रोगों से पैदा होते हैं जो औषधियों द्वारा किसी समय दबा दिये गये थे। ये प्राय: आयोडाइन, ब्रोमाइन, कुनैन आदि औषधियों से उत्पन्न होते हैं जिनका सेवन हम रोग को अच्छा करने के लिए करते हैं और जो शरीर के लिए बलवान विष हैं। कूने साहब के मत से टीका भी शरीर के भीतर विष प्रवेश करने का एक साधन है। इन औषधियों से मनुष्य जाति खराब होती जा रही है। इनसे जीवन-शक्ति निर्बल हो जाती है जिससे आगे उपदंश, मिर्गी, पागलपन आदि भयानक रोग उत्पन्न होते हैं। यह औषधियां वर्षों पहिले शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य उत्पन्न होने का बीज बो देती हैं जिससे आगे चलकर ये खुले घाव पैदा हो जाते हैं।

खुले हुये घावों में विजातीय-द्रव्य उनके द्वारा बहता रहता है। इसमें ज्वर भी होता है। ज्वर इस वास्ते होता है कि शरीर के भीतर विजातीय-द्रव्य के उफान से गर्मी पैदा होती है अतएव औषधि करने के समय इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि ज्वर एकदम कम कर दिया जाय। ज्वर कम करके घावों को भरने के लिए हिप बाथ, मिट्टी बाथ, स्टीम बाथ और प्राकृतिक भोजन अत्यन्त लाभकारी हैं।

पचास बरस के एक सज्जन की टाँगों और पैरों में घुटने तक खुले हुए घाव थे। घावों की संख्या बीस या चालीस थी। सब से बड़ा घाव चार इंच लम्बा और चार इंच चौड़ा था। उनमें दुर्गन्धित पतला मवाद निकलता था। घाव थोड़ी देर के लिये भर जाते थे किन्तु उनमें गर्मी प्रर्थात् एक खुजली उत्पन्न होती थी कि रोगी जब खुजला देता था तो ये घाव फिर बहने लगते थे। यह खुजली स्वर्चा के भीतर संचित विजातीय द्रव्य के उफान से पैदा होती था। जब घाव बहने लगते थे तो ...ली बंद हो जाती थी। कुछ घाव तो हड्डियों तक पहुँच

चुके थे। ऐसी स्थिति में यह रोगी कूने साहब के पास गया और जल चिकित्सा करने की प्रार्थना की।

उसका हाजमा बिगड़ चुका था। हलके से हलका भोजन भी वह नहीं पचा सकता था। फेफड़ों की दशा भी खराब हो गई थी। विजातीय द्रव्य की मात्रा बढ़ गई थी। रोगी को यह नहीं मालूम था कि वास्तव में उसके रोग का कारण विजातीय द्रव्य है जो शरीर के भीतर भरा हुआ है।

कूने साहब ने ठंडे पानी की गद्दी घावों पर रक्खी और ऊपर से ऊनी कपड़ा बाँध दिया। रोगी से प्राकृतिक भोजन करने, खुली हवा में रहने और प्रतिदिन चार सिट्ज बाथ लेने के लिए कहा गया। उसने पट्टियों पर तो विशेष ध्यान दिया किन्तु भोजन और स्नान पर ध्यान नहीं दिया। परिणाम इसका यह हुआ कि छः महीनों तक उसको कोई लाभ न हुआ। इसके पश्चात उससे कहा गया कि आप भोजन और स्नानों पर विशेष ध्यान दीजिये। दूसरे छः महीने में उसको बहुत लाभ हुआ। छोटे-छोटे घाव एकदम पूर गये और बड़े-बड़े भी करीब-करीब मुरझा गये। खुजली एकदम जाती रही। उसका हाजमा क्रमशः अच्छा होता गया। इस लाभ को देखकर रोगी ने अब और अधिक उत्साह से जल-चिकित्सा करना शुरू किया। घाव नीचे के अच्छे होने लगे और पेड़ू के नजदीक ऊपर निकलने लगे। यह रोग अच्छा होने का एक शुभ लक्षण था। जब ऊपर फोड़ा निकल आया तो रोगी ने समझा कि जल-चिकित्सा से कोई लाभ नहीं है। कूने साहब ने इसकी व्यवस्था उसे दी। उन्होंने कहा यह बीमारी उसी समय अच्छी होगी जब कि वह पेड़ू तक पहुँच जायगी जहाँ से यह उत्पन्न हुई थी। उस रोगी ने तीन वर्ष तक चिकित्सा की और इसके पश्चात् वह एक दम चंगा हो गया।

उत्पन्न होते हैं। ये उन रोगों से पैदा होते हैं जो औषधियों द्वारा किसी समय दबा दिये गये थे। ये प्रायः आयोडाइन, ब्रोमाइन, कुनैन आदि औषधियों से उत्पन्न होते हैं जिनका सेवन हम रोग को अच्छा करने के लिए करते हैं और जो शरीर के लिए घ्रत वान विष हैं। कूने साहब के मत से टीका भी शरीर के भीतर विष प्रवेश करने का एक साधन है। इन औषधियों से मनुष्य जाति खराब होती जा रही है। इनमें जीवन शक्ति निर्बल हो जाती है जिससे आगे उपदंश, मिर्गी, पागलपन आदि भयानक रोग उत्पन्न होते हैं। यह औषधियाँ पर्यो पहिले शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य उत्पन्न होने का बीज बो देती हैं जिससे आगे चलकर ये सूने घाव पैदा हो जाते हैं।

खुले हुये घावों में विजातीय-द्रव्य उनके द्वारा बहता रहता है। इसमें ज्वर भी होता है। ज्वर इस वास्ते होता है कि शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य के उफान से गर्मी पैदा होती है अतएव औषधि करने के समय इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि ज्वर एकदम कम कर दिया जाय। ज्वर कम करके घावों को भरने के लिए हिप बाथ, मिट्टी बाथ, स्टीम बाथ और प्राकृतिक भोजन अत्यन्त लाभकारी हैं।

पचास बरस के एक सज्जन की टाँगों और पैरों में घुटने तक खुले हुए घाव थे। घावों की संख्या तीस या चालीस थी। सब से बड़ा घाव चार इंच लम्बा और चार इंच चौड़ा था। उनमें दुर्गन्धित पतला मवाद निकलता था। घाव थोड़ी देर के लिये भर जाते थे किन्तु उनमें ऐसा प्रचंड एक खुजली उत्पन्न होती थी कि रोगी जब खुजला देता था तो ये घाव फिर बहने लगते थे। यह खुजली स्थानों के भीतर संचित विजातीय-द्रव्य के उफान से पैदा होती था। जब घाव बहने लगते थे तो बन्द हो जाती थी। कुछ घाव तो हड्डियों तक पहुँच

चुके थे। ऐसी स्थिति में यह रोगी कूने साहब के पास गया और जल चिकित्सा करने की प्रार्थना की।

उसका हाजमा बिगड़ चुका था। इसके मे इसका भोजन भी वह नहीं पचा सकता था। फेफड़ों की दशा भी खराब हो गई थी। विजातीय-द्रव्य की मात्रा बढ़ गई थी। रोगी को यह नहीं मालूम था कि वास्तव में उसके रोग का कारण विजातीय द्रव्य है जो शरीर के भीतर भरा हुआ है।

कूने साहब ने ठंडे पानी की गद्दी घावों पर रक्खी और ऊपर से ऊनी कपड़ा बाँध दिया। रोगी से प्राकृतिक भोजन करने, खुली हवा में रहने और प्रतिदिन चार सिट्ज़ बाथ लेने के लिए कहा गया। उसने पट्टियों पर तो विशेष ध्यान दिया किन्तु भोजन और स्नान पर ध्यान नहीं दिया। परिणाम इसका यह हुआ कि छः महीनों तक उसको कोई लाभ न हुआ। इसके पश्चात उससे कहा गया कि आप भोजन और स्नानों पर विशेष ध्यान दीजिये। दूसरे छः महीने में उसको बहुत लाभ हुआ। छोटे-छोटे घाव एकदम पूर गये और बड़े-बड़े भी करीब-करीब मुरझा गये। खुजली एकदम जाती रही। उसका हाजमा क्रमशः अच्छा होता गया। इस लाभ को देखकर रोगी ने अब और अधिक उत्साह से जल-चिकित्सा करना शुरू किया। घाव नीचे के अच्छे होने लगे और पेड़ू के नजदीक ऊपर निकलने लगे। यह रोग अच्छा होने का एक शुभ लक्षण था। जब ऊपर फोड़ा निकल आया तो रोगी न समझा कि जल-चिकित्सा से कोई लाभ नहीं है। कूने साहब ने इसकी व्यवस्था उसे दी। उन्होंने कहा यह बीमारी उसी समय अच्छी होगी जब कि वह पेड़ू तक पहुँच जायगी जहाँ से यह उत्पन्न हुई थी। उस रोगी ने तीन वर्ष तक चिकित्सा की और इसके पश्चात् वह एक दम चंगा हो गया।

विषैले कीड़े-मकोड़ों का काटना

पागल कुत्ते और साँप का काटना—

मनुष्य के रुधिर पर हर एक वस्तु का प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ता है। जिस समय रुधिर का स्पर्श विजातीय-द्रव्य से होता है उस समय उसमें तेजी उत्पन्न होती है। जब साँप काटता है तो खून में ज्वर की दशा उत्पन्न होता है। जिस समय शरीर में विजातीय-द्रव्य अधिक होता है तो विष का असर अति शीघ्र होता है। विजातीय-द्रव्य भी उमड़ने लगता है और विष की भयानकता को बढ़ा देता है। जितना अधिक विजातीय द्रव्य शरीर में मौजूद रहता है उतना ही अधिक विष पहुँचान पर खून का जोश उत्पन्न होता है। यही कारण है कि मधु की मक्खी जब काटती है तो किसी के भी एक बहुत बड़ा ददोरा पड़ जाता है और किसी को मच्छड़ काटने के सदृश एक छोटा सा निशान। बहुत से ऐसे भी रोगी देखे गये हैं जिन पर कुत्ते काटने का असर बहुत अधिक हुआ है और किसी पर कम। इसी प्रकार साँप के काटने से किसी को सिर्फ ज्वर उत्पन्न होता है और किसी की मृत्यु हो जाती है।

एक बालक जंगल में लेटा हुआ था। अचानक एक साँप ने उसके सर में काट लिया। उसके पेट में ऐंठन पड़ गई और पंद्रह घंटे तक उसको पेशाब न उतरा। लोग उसे खून साहब के पास ले गये और उसकी जल-चिकित्सा होने लगी। उसको सारे शरीर का स्टीम बाथ और स्थानिक स्टीम बाथ दिये गये जिससे उसको खूब पसीना निकला साथ ही सिट्ज बाथ और हिप बाथ भी दिये गये और खाने का स्वाभाविक भोजन दिया गया। थोड़ी देर में लड़के का पेशाब उतरा और उसके प्राण बच गये।

हर प्रकार के विषैले कीड़ों के काटने से काटे हुए स्थान पर

एक प्रकार की सूजन पैदा हो जाती है। रोगी को उस स्थान पर बड़ी गर्मी मालूम होती है और ज्वर होने लगता है। अतएव उस समय सूजन और ज्वर को रोक देना चाहिए। सबसे पहिले जिस जगह विषैले जंतु ने काटा हो उसको ठंडे पानी से धोना चाहिये अर्थात् उसे जब तक सम्भव हो सके पानी के अन्दर रखे रहना चाहिए। इसके बाद उस पर पानी की गद्दी बाँधना चाहिए, साथ साथ बारी-बारी से हिपबाथ और सिट्ज़ बाथ लेना चाहिये।

यह प्राय देखा गया है कि शरीर के जिस हिस्से पर विजातीय द्रव्य अधिक होगा उसी हिस्से पर विषैले जन्तु प्राय काटा करते हैं। पानी की गद्दी का गुण जितना वर्णन किया जाय थोड़ा है। वह शरीर के विष को निकाल देती है या उसे एक थैली में लपेट कर उससे होने वाली हानि को नष्ट कर देती है।

जब कि सूजन फैल जाती है और शरीर क अन्य भागों में पहुँचने लगती है तो उस समय अधिक भय होता है। उस हिस्से को एकदम पानी में डुबाना चाहिए और उस पर पानी की गद्दी बाँधना चाहिए। इसमें देरी नहीं करनी चाहिए। सिट्ज बाथ और हिप बाथ बारी-बारी से दो-दो, तीन-तीन घंटे के अंतर में लेना चाहिये। बुखार उतरने पर रोगी अति शीघ्र चंगा हो जाता है। उस बीच में रोगी को भोजन न दिया जाय तो अच्छा है किन्तु यदि देने की जरूरत ही पड़े तो थोड़ी-सी रोटी और फल देना चाहिये। पानी पीने को बराबर देते रहना चाहिये। स्नानों क बाद गरमी लाने क लिये रोगी को धूप में बैठाना चाहिये या खुली हवा में व्यायाम कराना चाहिये। कटे हुए भाग में स्टीम बाथ देना चाहिये और उसके बाद ठंडे स्नान।

बीस वर्ष के एक नौजवान के एक बायें हाथ में एक विषैले कीड़े ने काट खाया। कुछ घंटों में उसको दर्द मालूम हुआ और उसका हाथ सूजने लगा। थोड़े समय के अनन्तर उसका पूरा

हाथ फूल गया और डाक्टरों ने कहा कि इसके हाथ में विष फैल गया है इस वास्ते इसके जान की रक्षा के लिए हाथ काट देना चाहिये। एक जल-चिकित्सक महोदय वहाँ पर खड़े हुए थे। उन्होंने उस हाथ पर स्टीम बाथ दिया और ट्रेपबाथ दिया। हाथ पर पानी की गद्दियाँ भी बाँधी गईं, रोगी को धूप में खूब दौड़ाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े समय में रोगी बिलकुल चंगा हो गया।

२—सब प्रकार के ज्वर

इस समय नाना प्रकार के ज्वर जो फैले हुये हैं, उनके नाम भिन्न-भिन्न क्यों न हों किंतु सबका कारण विजातीय-द्रव्य का उफान ही है। जो देश ज्यादा गरम होता है वहाँ गरमी के कारण विजातीय-द्रव्य में उतना ही अधिक उफान होता है और इसलिए उतना ही ज्वर चढ़ता है। गरम देशों में प्रायः उन लोगों को भी ज्वर आता है जिन लोगों के शरीर में विजातीय द्रव्य की मात्रा बहुत कम होती है। जिन देशों में न गरमी अधिक पड़ती है और न सरदी वहाँ ज्वर की तीव्रता इतनी नहीं होती। गरम देशों में ज्वर भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होता है। पीला ज्वर सब से अधिक भयानक होता है। मनुष्य ज्यों ज्यों दवाओं को खाता है, उतना ही उसका शरीर पीला पड़ता जाता है और इसलिये उसको पीला ज्वर अधिक तंग करता है। थकावट, सर का दर्द, ऐंठन, प्यास, त्वचा का रूखापन इसके लक्षण हैं। तत्पश्चात् मनुष्य का पाखाना काला पड़ जाता है और काले रंग का वह कै करने लगता है।

हमारा कर्तव्य यह होना चाहिये कि हम ज्वर को शुरू से ही रोक दें। इसके साधन हमेशा हमारे पास मौजूद रहते हैं। पहले अनुत्तेजक नियमित भोजन किया जाय, दूसरे रहन-सहन सादा हो। तीसरे हिप और सिट्ज बाथ लिए जावें। गरम देशों

में यद्यपि बहुत ठंडा जल प्राप्त नहीं हो सकता किन्तु प्रकृति ने यहाँ जितना ठंडा जल दे रक्खा है वह स्नानों के लिए काफी लाभकारी है। कुनैन और दूसरी औषधियों से ज्वर यथार्थ में अच्छा नहीं हो सकता उसमें रोग दब जाता है और समय पाकर और भी अधिक भीषण रूप धारण कर लेता है।

जल-चिकित्सा से तीव्र से तीव्र ज्वर बहुत जल्द आराम होते हैं। जितने अधिक देर तक और जितने अधिक बार स्नान ज्वर में किये जायँ उतने ही अधिक वे लाभ करते हैं। एक सज्जन ने निम्नलिखित पत्र कूने साहब को लिखा था।

प्रिय कूने साहब,

मेरे पास आपकी दो पुस्तकें मौजूद हैं। उन्हीं के अनुसार मैं जल-चिकित्सा करता हूँ। मुझे फायदा हुआ है। इसलिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मुझे एक बार इतना कठिन ज्वर आया था कि मैं बेहोश हो गया। मैंने जल चिकित्सा करना शुरू किया। पहले पहल कुर्सी में बैठकर मैंने स्टीम बाथ लिया और इसके बाद एक हिप बाथ। परिणाम बहुत ही अच्छा हुआ। मैं चार पाई से उठकर इधर उधर घूमने लगा जिसको देखकर मेरे दोस्त और मेरी स्त्री को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। मैंने इसी चिकित्सा से अनेकों रोगियों को अच्छा किया है।

मलेरिया ज्वर—यह ज्वर भी एक भयानक ज्वर है। यह जाड़ा देकर आता है और जब पसीना आ जाता है तो उतर जाता है। यह ज्वर कभी रोज आता है और कभी कभी दूसरे रोज। इसकी चिकित्सा बड़ी सरल है। मिट्टी की एक मोटी पट्टी तीन चार घंटे तक सम्पूर्ण पेड़ू पर बाँध देना चाहिये। पट्टी के लगाने से पाखाना-पेशाब साफ होता है, भीतरी जलन कम होती है और घबड़ाहट भी रुकती है। इसके बाद हिप बाथ और सिट्ज़ बाथ बारी-बारी से लेना चाहिये।

सन बाथ भी इस ज्वर के लिए बड़े लाभदायक हैं। सन बाथ उतना ही देना चाहिये जितना रोगी सह सके। भूख लगने पर दूध और फल दिये जायँ, अन्न नहीं देना चाहिये। जिस रोज बुखार की बारी हो उस रोज आहार कुछ भी न करावें। हिप बाथ और सिट्ज़ बाथ देते रहें। चार-पाँच रोज बाद रोगी की हालत बिलकुल सुधर जायगी। और उस समय फिर अन्न दिया जा सकता है।

कुछ लोगों को बहुत पुराना ज्वर होता है। इस ज्वर को दूर करने के लिए समय अधिक लगता है। रोगी को घबड़ाना न चाहिये।

जो चिकित्सा ऊपर मलेरिया ज्वर के लिए बतलाई गई है वही चिकित्सा टाइफायड और एनट्रिक्ट ज्वरों में भी लाभ दायक होती है।

३—प्लेग की बीमारी

प्लेग आज कई वर्षों से हिन्दुस्तानियों को बहुत तंग कर रहा है। यह चार प्रकार का होता है—1 Bebunic, 2 Nonbunic, 3 Septisemic, और चौथा Intestinal।

पहले प्रकार के प्लेग में गिल्टी निकल आती है, दूसरे में फेफड़ों में सूजन होता है, तीसरे में खून खराब हो जाता है, और चौथे में अंतड़ियों में विकार उत्पन्न होता है।

जब यह बीमारी कहीं पर आक्रमण करती है तो सबसे पहले इसके शिकार चूहे होते हैं। चूहे एक घर से दूसरे घरों में बरा बर प्रवेश करते रहते हैं, इसलिए यह बीमारी घर घर में फैल जाता है। जिस समय चूहे मरने लगें तो प्लेग से बचने का सब से अच्छा उपाय मकान को छोड़ देना है। यदि वहीं रहना पड़े तो घर को खूब स्वच्छ रखना चाहिये। नालियों और पाखाने को फिनायल से धुलवाना चाहिये, घर में हवन कराना चाहिये

और कभी-कभी नीम की सूखी पत्तियाँ जलवाना चाहिये जिस का धुआँ घर में व्याप्त हो जाय। अगर कोई चूहा मर जाय तो उसे शहर के बाहर फिंकवा देना चाहिये।

यदि कोई रोगी प्लेग से पीड़ित हो गया हो तो उसकी चिकित्सा इस प्रकार करनी चाहिये। रोगी को आध घण्टे तक पूरे शरीर का स्टीम बाथ देना चाहिये और उसके बाद फिर आध घंटे का हिपबाथ। इसके पश्चात चार चार घंटों के पश्चात रोगी को उस समय तक सिट्ज बाथ देना चाहिये जब तक कि उसका ज्वर दूर न हो। यदि पहले स्टीम बाथ मे पसीना न आया हो तो दूसरे दिन स्टीम बाथ देना चाहिये।

यदि रोगी को कब्ज हो और स्नानों से पाखाना न आया हो तो पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी बाँधनी चाहिए। यदि गिल्टी निकल आई हो तो उसमें स्टीम बाथ देना चाहिए और उसके बाद सिट्ज बाथ। यदि गिल्टी में जलन उत्पन्न हुई हो तो ऊनी कपड़े से उस पर गरम पानी डालना चाहिए और थोड़ी देर बाद ठंडे पानी की गद्दी उसमें बाँध देना चाहिये। इस गद्दी को समय-समय पर तर करते रहना चाहिए।

रोग की हालत में रोगी को यदि भूख न लगी हो तो कुछ भी खाने को न देना चाहिए। जब कुछ भूख लगे तब फल और दूध देना चाहिए। रोगी की हालत बिलकुल अच्छी हो जाय तब अन्न खाने को देना चाहिए।

४—मियादी बुखार (Typhus), पचिश, हैजा और अतिसार

मियादी बुखार प्राय जवानों को पकड़ता है। यह सब ज्वरों से अधिक तीव्र होता है। इससे लोग बहुत डरते हैं और हजारों स्त्री पुरुष इसकी भेंट प्रति वर्ष होते हैं। जल-चिकित्सा चुटकी बजाते इस ज्वार को दूर करती है। यदि स्वाभाविक

रीति से स्नानों के पश्चात् रोगी को पसीना आने लगा तो फिर कोई भय की बात नहीं रह जाती। जिन रोगियों को महीनों की चिकित्सा से लाभ नहीं हुआ था उन्हें कूने साहब ने कुछ ही दिनों में अच्छा किया है।

यह बात अनुभव से सिद्ध हो चुकी है कि तमाम तीव रोगों को स्टीम बाथ से बहुत लाभ पहुँचा है। रोगी की शारीरिक दशा के अनुसार कम या अधिक स्टीम बाथ देना चाहिए। मिट्ठ और हिप बाथ दोनों बारी-बारी से लेना चाहिए।

पेचिश और हैजा—

पेचिश और हैजे में भी जल चिकित्सा से काफी लाभ पहुँचा है। इन दोनों बीमारियों में हाजमें की दशा खराब हो जाती है और भयानक भीतरी ज्वर होता है। हैजे में तो यह ज्वर इतना भयानक होता है कि सारा शरीर जलकर कायला हो जाता है। रोगी के होठ, नाक और आँखों के देखने से इस कथन की सत्यता भलीभांति मालूम हो सकती है।

पेचिश और हैजा उन्हीं लोगों पर विशेष रूप से आक्रमण करते हैं जिनमें विजातीय द्रव्य अधिक होता है। इसलिए यह कोई संयोग की बात नहीं होती कि अमुक पुरुष को हैजा हो गया। अनुभव से यह बात मालूम हुई कि जिनका हाजमा खराब होता है, हैजा उन्हीं को प्राय: होता है।

वास्तव में हैजा शरीर को साफ करने का एक उत्तम साधन है। बाहरी कारणों से जैसे ठंढक, डर, मौसम आदि से जब विजातीय-द्रव्य में जोश उमड़ता है तो यह पेट की ओर लौटने लगता है। यदि शरीर में शक्ति है तो वह विजातीय-द्रव्य के जोर को रोक लेता है और मनुष्य पाखानों के बाद फिर वर्षों के लिये अत्यन्त स्वस्थ हो जाता है। विरुद्ध इसके यदि दवा —ते मनुष्य की शक्ति नष्ट हो गई है तो वह उस ओर को

नहीं रोक सकता और उसके प्राण खतरे में पड़ जाते हैं। ज्वर की दशा में चाहे पेचिश हो अथवा हैजा हो, एक ऐसी क्रिया उत्पन्न होती है जो जल्दी देखने में नहीं आती। भीतरी ज्वर केवल हाजमे पर आक्रमण करता है जिसका परिणाम यह होता है कि भीतर की ओर तो गरमी होती है और बाहर की ओर सरदी।

इन बीमारियों में स्नान द्वारा भीतरी गरमी को पहले रोक देना चाहिए और रोगी को खूब पसीना लाना चाहिए। भीतरी जलती हुई गरमी को सहन करने के लिए यदि शरीर में काफी शक्ति है तो रोगी शीघ्र चङ्गा हो जायगा। किन्तु यदि कम है तो अधिक समय लगेगा।

जिन रोगियों का भीतरी ज्वर बाहर आ जाता है वे जल्द अच्छे हो जाते हैं किन्तु जिन्हें बाहरी बुखार नहीं होता है वे मर जाते हैं। हैजा और पेचिश को अच्छा करने में सिट्ज बाथ विशेष सहायक होते हैं। साथ ही पेड़ू का स्टीम बाथ भी लेना चाहिए। स्टीम बाथ के पश्चात् एक सिट्ज या हिप बाथ अवश्य लेना चाहिए। सम्भव हो तो कभी कभी मन बाथ भी ले लेना चाहिए। कुछ रोगियों को तो केवल कुछ ठंडे स्नानों से ही लाभ हो जाता है। भोजन स्वाभाविक होना चाहिए।

पेचिश थोड़े से हिप बाथ और सिट्ज बाथ ही से अच्छी हो जाती है। यदि इससे अच्छी न हो तो एक ईंट गरम कीजिए और उसे एक ऊनी वस्त्र में लपेटकर गुदा के नीचे रख लीजिए। आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि दस्त शीघ्र बन्द हो जायँगे। कुछ घंटों के बाद एक सिट्ज बाथ लेना चाहिए और गरम ईंट का प्रयोग फिर करना चाहिए।

अतिसार कै के साथ—

यह एक प्रकार का हैजा ही है। यह प्रायः उन बच्चों को

रीति से स्नानों के पश्चात् रोगी को पसीना आने लगा तो फिर कोई भय की बात नहीं रह जाती। जिन रोगियों को महीनों की चिकित्सा से लाभ नहीं हुआ था उन्हें कूने साहब ने कुछ ही दिनों में अच्छा किया है।

यह बात अनुभव से सिद्ध हो चुकी है कि तमाम तीव्र रोगों को स्टीम बाथ से बहुत लाभ पहुँचा है। रोगी की शारीरिक दशा के अनुसार कम या अधिक स्टीम बाथ देना चाहिए। सिट्ज़ और हिप बाथ दोनों बारी-बारी से लेना चाहिए।

पेचिश और हैजा—

पेचिश और हैजे में भी जल चिकित्सा से काफी लाभ पहुँचा है। इन दोनों बीमारियों में हाजमें की दशा खराब हो जाती है और भयानक भीतरी ज्वर होता है। हैजे में तो यह ज्वर इतना भयानक होता है कि सारा शरीर जलकर कोयला हो जाता है। रोगी के होठ, नाक और आँखों के देखने से इस कथन की सत्यता भलीभांति मालूम हो सकती है।

पेचिश और हैजा उन्हीं लोगों पर विशेष रूप से आक्रमण करते हैं जिनमें विजातीय द्रव्य अधिक होता है। इसलिए यह कोई संयोग की बात नहीं होती कि अमुक पुरुष को हैजा हो गया। अनुभव से यह बात मालूम हुई कि जिनका हाजमा खराब होता है हैजा उन्हीं को प्राय: होता है।

वास्तव में हैजा शरीर को साफ करने का एक उत्तम साधन है। बाहरी कारणों से जैसे ठंडक, डर, मौसम आदि से जब विजातीय-द्रव्य में जोश उमड़ता है तो वह पेट की ओर लौटने लगता है। यदि शरीर में शक्ति है तो वह विजातीय-द्रव्य के जोर को रोक लेता है और मनुष्य पाखानों के बाद फिर वर्षों के लिये अत्यन्त स्वस्थ हो जाता है। विरुद्ध इसके यदि पथा ...से मनुष्य की शक्ति नष्ट हो गई है तो वह उस जोर को

नहीं रोक सकता और उसके प्राण खतरे में पड़ जाते हैं। ज्वर की दशा में चाहे पेचिश हो अथवा हैजा हो, एक ऐसी क्रिया उत्पन्न होती है जो जल्दी देखने में नहीं आती। भीतरी ज्वर केवल हाजमे पर आक्रमण करता है जिसका परिणाम यह होता है कि भीतर की ओर तो गरमी होती है और बाहर की ओर सरदी।

इन बीमारियों में स्नान द्वारा भीतरी गरमी को पहले रोक देना चाहिए और रोगी को खूब पसीना लाना चाहिए। भीतरी जलती हुई गरमी को सहन करने के लिए यदि शरीर में काफी शक्ति है तो रोगी शीघ्र चङ्गा हो जायगा। किन्तु यदि कम है तो अधिक समय लगेगा।

जिन रोगियों का भीतरी ज्वर बाहर आ जाता है वे जल्द अच्छे हो जाते हैं किन्तु जिन्हें बाहरी बुखार नहीं होता है वे मर जाते हैं। हैजा और पेचिश को अच्छा करने में सिट्ज बाथ विशेष सहायक होते हैं। साथ ही पेड़ू का स्टीम बाथ भी लेना चाहिए। स्टीम बाथ के पश्चात् एक सिट्ज या हिप बाथ अवश्य लेना चाहिए। सम्भव हो तो कभी कभी सन बाथ भी ले लेना चाहिए। कुछ रोगियों को तो केवल कुछ ठंढे स्नानों से ही लाभ हो जाता है। भोजन स्वाभाविक होना चाहिए।

पेचिश थोड़े से हिप बाथ और सिट्ज बाथ ही से अच्छी हो जाती है। यदि इससे अच्छी न हो तो एक ईंट गरम कीजिए और उसे एक ऊनी वस्त्र में लपेटकर गुदा के नीचे रख लीजिए। आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि दस्त शीघ्र बन्द हो जायँगे। कुछ घंटों के बाद एक सिट्ज बाथ लेना चाहिए और गरम ईंट का प्रयोग फिर करना चाहिए।

आँवसार कै के साथ—

यह एक प्रकार का हैजा ही है। यह प्रायः उन बच्चों को

रीति से स्नानों के पश्चात् रोगी को पसीना आने लगा तो फिर कोई भय की बात नहीं रह जाती। जिन रोगियों को महीनों की चिकित्सा से लाभ नहीं हुआ था उन्हें कूने साहब ने कुछ ही दिनों में अच्छा किया है।

यह बात अनुभव से सिद्ध हो चुकी है कि तमाम तीव्र रोगों को स्टीम बाथ से बहुत लाभ पहुँचा है। रोगी की शारीरिक दशा के अनुसार कम या अधिक स्टीम बाथ देना चाहिए। सिट्ज और हिप बाथ दोनों बारी-बारी से लेना चाहिए।

पेचिश और हैजा—

पेचिश और हैजे में भी जल-चिकित्सा से काफी लाभ पहुँचा है। इन दोनों बीमारियों में हाजमें की दशा खराब हो जाती है और भयानक भीतरी ज्वर होता है। हैजे में तो यह ज्वर इतना भयानक होता है कि सारा शरीर जलकर कायला हो जाता है। रोगी के होठ, नाक और आँखों के देखने से इस कथन की सत्यता भलीभांति मालूम हो सकती है।

पेचिश और हैजा उन्हीं लोगों पर विशेष रूप से आक्रमण करते हैं जिनमें विजातीय द्रव्य अधिक होता है। इसलिए यह कोई संयोग की बात नहीं होती कि अमुक पुरुष को हैजा हो गया। अनुभव से यह बात मालूम हुई कि जिनका हाजमा खराब होता है हैजा उन्हीं को प्राय: होता है।

वास्तव में हैजा शरीर को साफ करने का एक उत्तम साधन है। बाहरी कारणों से जैसे ठंढक, डर, मौसम आदि से जब विजातीय-द्रव्य में जोश उमड़ता है तो वह पेड़ू की ओर लौटने लगता है। यदि शरीर में शक्ति है तो वह विजातीय-द्रव्य के जोर को रोक लेता है और मनुष्य चालानों के बाद फिर वर्षों के लिये अत्यन्त स्वस्थ हो जाता है। विरुद्ध इसके यदि खाता खाते-खाते मनुष्य की शक्ति नष्ट हो गई है तो वह उस जोर को

नहीं रोक सकता और उसके प्राण खतरे में पड़ जाते हैं। ज्वर की दशा में चाहे पेचिश हो अथवा हैजा हो, एक ऐसी क्रिया उत्पन्न होती है जो जल्दी देखने में नहीं आती। भीतरी ज्वर केवल हाजमे पर आक्रमण करता है जिसका परिणाम यह होता है कि भीतर की ओर तो गरमी होती है और बाहर की ओर सरदी।

इन बीमारियों में स्नान द्वारा भीतरी गरमी को पहले रोक देना चाहिए और रोगी को खूब पसीना लाना चाहिए। भीतरी जलती हुई गरमी को सहन करने के लिए यदि शरीर में काफी शक्ति है तो रोगी शीघ्र चङ्गा हो जायगा। किन्तु यदि कम है तो अधिक समय लगेगा।

जिन रोगियों का भीतरी ज्वर बाहर आ जाता है वे जल्द अच्छे हो जाते हैं किन्तु जिन्हें बाहरी बुखार नहीं होता है वे मर जाते हैं। हैजा और पेचिश को अच्छा करने में सिट्ज बाथ विशेष सहायक होते हैं। साथ ही पेड़ू का स्टीम बाथ भी लेना चाहिए। स्टीम बाथ के पश्चात् एक सिट्ज या हिप बाथ अवश्य लेना चाहिए। सम्भव हो तो कभी-कभी सन बाथ भी ले लेना चाहिए। कुछ रोगियों को तो केवल कुछ ठंडे स्नानों से ही लाभ हो जाता है। भोजन स्वाभाविक होना चाहिए।

पेचिश थोड़े से हिप बाथ और सिट्ज बाथ ही से अच्छी हो जाती है। यदि इससे अच्छी न हो तो एक ईंट गरम कीजिए और उसे एक ऊनी वस्त्र में लपेटकर गुदा के नीचे रख लीजिए। आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि दस्त शीघ्र बन्द हो जायेंगे। कुछ घंटों के बाद एक सिट्ज बाथ लेना चाहिए और गरम ईंट का प्रयोग फिर करना चाहिए।

अतिसार कै के साथ—

यह एक प्रकार का हैजा ही है। यह प्राय: बन बच्चों —

विशेष रूप से होता है जिन्हें तैयार किया हुआ बाजारू बोतल का दूध पिलाया जाता है, और जिससे उनके शरीर में विजातीय-द्रव्य भर जाता है। जो चिकित्सा हैजे की है वही चिकित्सा इसकी भी है। बच्चों क बदन में माँ क साथ लेटकर गरमी लाइ जा सकती है।

साधारण अतिसार—

(Diarrhoea) यह एक प्रकार की पेचिश और हैजा है। जिसमें विजातीय-द्रव्य को बाहर निकाल फेंकने की कोशिश होती है। यदि यह चिरकाल तक न रहे तो इसे स्वस्थ होने का एक उत्तम साधन समझना चाहिए।

डायरिया और कब्ज देखन में एक दूसरे के विरुद्ध प्रतीत होते हैं किंतु वास्तव में दोनों पाचनशक्ति की खराबी से उत्पन्न होते हैं जो भीतरी गरमी और अधिक भोजन से उत्पन्न होती है। जिस प्रकार एक ही कारण से एक मनुष्य स्थूल और दूसरा दुबला हो जाता है उसी प्रकार से एक ही कारण से एक को अतिसार होता है और दूसरे को कब्ज।

यदि स्नानों से कब्ज न खुले तो मैदान में शौच जाना चाहिए। ताजी हवा का शौच पर अधिक प्रभाव पड़ता है। जो काम अँधेरे पाखाने में असम्भव था वह ताजी हवा म सरल हो जाता है।

५—खुजली, जूँ पड़ जाना, आँतों का उतरना

यह बात हमको प्रत्यक्ष देखने में आती है कि गरम देश में बसन्त ऋतु क एक दिन में सैकड़ों कीड़े वृक्षों के हरे-हरे पत्तों पर उत्पन्न होत हैं। वे पत्तियों को देखते-देखते नाश कर देत हैं किन्तु हम उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। इसके विरुद्ध एक ठंडी रात में वे कीड़े उतने ही जल्द मर जाते हैं जितनी जल्द वे पैदा हुए थे।

प्रकृति ने एक रात्रि में ठंढक के कारण यह काम करके दिखाया जिनका होना असम्भव था। यह कीड़े वास्तव में उन्हीं प्राकृतिक नियमों के आधीन रहते हैं। इससे यह परिणाम निकला कि खुजली के कीड़े जूँ और दूसरे प्रकार के कीड़े उन्हीं स्थानों में रहते हैं जहाँ उनको भोजन की सामग्री मिलती रहती है। अर्थात् वे स्थान जो रोगी हो जाते हैं, यानी जहाँ विजातीय द्रव्य भरा रहता है। इन कीड़ों का जीवित रहना असाधारण टेम्परेचर में भी रहता है जो प्रायः उन मनुष्यों में होता है जिनका शरीर विजातीय-द्रव्य से भरा हुआ है। यदि हम टेम्परेचर को कम कर दें और विजातीय-द्रव्य को शरीर के बाहर निकाल दें तो हम उन कीड़ों से मुक्त हो सकते हैं।

भीतरी टेम्परेचर के कम करने का सबसे उत्तम उपाय ठंडे स्नानों का लेना और स्वाभाविक भोजन करना है। औषधि के सेवन करने से स्थायी आराम नहीं हो सकता।

एक सज्जन अँतड़ियों के भिन्न २ प्रकार के कीड़ों से पीड़ित थे। उनकी पाचन-शक्ति खराब हो गई थी और उनके स्नायु भी शिथिल हो चुके थे। वे मरने ही वाले थे। उनके पाखाने में अनेकों कीड़े मौजूद रहते थे। वे कुने साहब के पास गये और उनके आदेशानुसार जल-चिकित्सा करने लगे। दूसरे महीने में उनकी हालत बदल गई और कुछ समय के पश्चात् वे बिलकुल अच्छे हो गये। उनको हिप बाथ और सिट्ज़बाथ दिये गये थे और अनुत्तेजक कच्चा भोजन दिया जाता था।

एक सज्जन खुजली से पीड़ित थे। उनकी अवस्था १७ वर्ष की थी। उन्होंने सैकड़ों दवायें की थीं किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ था। वे कुने साहब के पास गये और उनके आदेशानुसार जल-चिकित्सा करने लगे। उनको हिप बाथ और सिट्ज़ बाथ दिये गये और कभी-कभी स्टीम बाथ भी दिया जाता था।

भोजन उनका स्वाभाविक था। तीन सप्ताह में वे बहुत अच्छे हो गये। और चौथे सप्ताह में वे बिलकुल चंगे हो गये।

आँतों का उतरना

आँत के उतरने का कारण पेड़ू में विजातीय-द्रव्य का इकट्ठा होना और उस पर तनाव होना है। तनाव के कारण जब ऊपर से कोई बोझ पड़ता है तो भिल्ली में एक छेद हो जाता है। भिन्न-भिन्न रोगियों में भिन्न-भिन्न स्थानों में छेद होता है किन्तु सब छेदों का कारण एक ही होता है। कुछ लोग कहते हैं कि गिरने से या चोट लगने से आँतें उतरती हैं किन्तु उनका यह भ्रम है।

जल चिकित्सा द्वारा विजातीय-द्रव्य को बाहर निकालकर यह रोग अच्छा किया जा सकता है।

६—सब प्रकार के क्षय रोग

क्षय रोग एक ऐसी बीमारी है जो डाक्टरों को चक्कर में डाल देती है। यह जल्दी अच्छी नहीं होती। यह आयु और वंश का विचार नहीं करती, प्रत्येक प्रकार के मनुष्यों को धर दबोचती है और उनका अन्त कर देती है।

फेफड़े का यह भयंकर रोग जितना फैल रहा है शायद उतना और कोई रोग नहीं फैल रहा है। इस रोग के प्रत्यक्ष लक्षण एक दूसरे से इतने भिन्न होते हैं कि दो रोगियों में समान नहीं होते। यदि एक को दमा है तो दूसरे को सर दर्द होता है। यदि तीसरे का हाजमा खराब होता है तो चौथे को कोई लक्षण मृत्यु के १४ रोज पहिले तक नहीं दिखाई देता। पाँचवाँ रोगी ऐसा होता है कि पहिले उसे कुछ लक्षण नहीं दिखलाई पड़ता, उस पर रोग का एकदम आक्रमण होता है और वह कुछ ही दिनों में मर जाता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें वास्तव में क्षय रोग हुआ

है किंतु वे समझते हैं कि हमारी हड्डियाँ सड़ रही हैं। बहुत से क्षय रोगियों के आँख, कान या कंधों में पीड़ा होती है, इसलिए वे उस क्षय को पीड़ा कहकर टाल देते हैं। प्रायः क्षय रोग में कंठ में नासिका की नालियों में और नाक की झिल्ली में जलन उत्पन्न होती है। कुछ क्षय रोगियों के पैर और टाँगों पर खुले घाव हो जाते हैं।

जितने क्षय रोग के रोगी होते हैं उनके मुँह अधिक या कम खुले होते हैं, रात में सोते समय ये श्वांस खींचने के लिए विशेष रूप से खुले होते हैं। इसका कारण यह है कि शरीर के भीतर अधिक गरमी होती है, इसलिए बाहरी ठंडी हवा की बार-बार उन्हें आवश्यकता पड़ती है।

ताजी और स्वच्छ हवा द्वारा शरीर के खून को साफ करना फेफड़ों का काम होता है। जब उन पर विजातीय-द्रव्य जमा हो जाता है तो वे अपना काम भलीभाँति नहीं कर सकते। जो विजातीय-द्रव्य उनके द्वारा बाहर निकलता रहता है उनका निकलना रुकने लगता है और वह भीतर फेफड़ों पर जमा होता जाता है। उस विजातीय-द्रव्य से फेफड़ों को बड़ी हानि पहुँचती है। इसका परिणाम यह होता है कि खून बिगड़ जाता है और उसमें असाधारण गरमी पैदा हो जाती है। गरमी पैदा होने से रोगी को २४ घंटे टेम्परेचर रहता है और उसके फेफड़ों में जलन होती है और वे धीरे-धीरे जलने लगते हैं। फेफड़ों के जो भाग गल जाते हैं वे कफ के रूप में बाहर निकलते रहते हैं।

आजकल सब प्रकार के क्षय रोगों को लोग बड़ी भयानक दृष्टि से देखते हैं, और उसका देखना उचित भी है क्योंकि क्षय रोग वास्तव में बड़ा भयानक है। फेफड़ों को ठोंक ठोंककर क्षय का पता लगाया जाता है, किंतु उस समय तक पता नहीं लगता जब तक रोग असाध्य नहीं हो जाता। ऐसे रोग वर्षों पहिले बतलाये जा सकते हैं किंतु शोक है कि डाक्टरों को प्रायः यह

बाद नहीं मालूम होती। क्षय का टीका लगाया जाता है, फेफड़े का चीरफाड़ भी होता है किन्तु मेरी राय में इन क्रियाओं से क्षय रोग दूर नहीं हो सकता।

फेफड़ों को अच्छा करने की कोई रामबाण औषधि वास्तव में नहीं है। हाँ जिस तरीके से वर्षों में यह रोग बढ़ा है उसी तरीके से विजातीय-द्रव्य निकालकर यह रोग जरूर अच्छा किया जा सकता है। आकृति निदान से वर्षों पहिले मालूम हो जाता है कि अमुक मनुष्य को क्षय रोग होगा और उस समय से यह रोग शीघ्र ही दूर किया जा सकता है। आकृति निदान (Facial expression) इसलिए रोगियों के लिये बड़े काम की चीज है। क्षय रोग के प्रारम्भ को रोगी नहीं महसूस करते। यदि उनसे कहो कि उनको क्षय हुआ है तो वे सहसा विश्वास भी नहीं करते। कूने साहब ने एक बार देखने में एक हट्टी-कट्टी लड़की से कहा कि देखो तुमको क्षय हो रहा है, मेरी चिकित्सा करो। उसने उत्तर दिया, जनाब आप क्या कहते हैं। मैं काफी चंगी हूँ। कूने साहब चुप रहे। उन्होंने उसकी मृत्यु के चार महीने पूर्व एक बार फिर चेतावनी दी, किंतु उसने कुछ भी ध्यान न दिया। ३ महीने के बाद वह बीमार पड़ी और मर गई।

अब यहाँ फेफड़ों की बीमारी का कारण बतलाना आवश्यक जान पड़ता है। फेफड़ों का रोग उन रोगों से उत्पन्न होता है जो किसी समय शरीर में उभड़े थे किंतु जो औषधियों से दबा दिए गये। फेफड़ों के रोग जननेंद्रिय सम्बन्धी रोग से भी उत्पन्न होते हैं। ये रोग प्रायः बच्चों में उतर आते हैं। पिता-माता का विजातीय-द्रव्य बच्चे में जमा होता है और अवसर पाकर वह उभड़ता है और इस पैतृक विजातीय-द्रव्य से बच्चे को क्षय हो जाता है। वीर्य में माता-पिता के गुण रहते हैं और वे ही बच्चों में उतरते हैं। कंठमाला के रोगियों को भी क्षय होता

है। कंठमाला की अवस्था में विजातीय द्रव्य निकाल फेंकने की शक्ति शरीर में रहती है, किन्तु धीरे-धीरे शक्ति नष्ट हो जाती है। परन्तु कंठमाला जब सड़ जाता है तो वह क्षय में तब्दील हो जाता है और उस समय इलाज करना कठिन हो जाता है। तदनुसार मनुष्य स्वांस द्वारा चाहे जितने कीड़े अन्दर भर ले किन्तु उन्हें क्षय रोग एकाएक कभी नहीं हो सकता। इन कीड़ों की वृद्धि उस समय तक नहीं होती जब तक शरीर का तापमान ऊँचा न हो। तन्दुरुस्त मनुष्य में इतना ऊँचा तापमान होना असम्भव है। हाँ नस्ल दर नस्ल जब विजातीय-द्रव्य पैतृक हो जाता है या मनुष्य अस्वाभाविक रहन-सहन और भोजन द्वारा अपना शरीर नष्ट कर लेता है तो क्षय अवश्य होता है।

सब बीमारियों की तरह क्षय की भी बीमारी पेट से उत्पन्न होती है। सबसे पहिले पाचन-शक्ति खराब होती है। अधिकतर दशाओं में पैतृक विजातीय-द्रव्य से क्षय पैदा होता है, और शायद फेफड़ों में विजातीय-द्रव्य इकट्ठा जल्द होता है। दूसरे कोठा की अपेक्षा फेफड़ों की वृद्धि शीघ्र नहीं होती, बल्कि वे नाजुक और कमजोर बने रहते हैं। बाहरी कीटाणुओं का सामना करने की शक्ति उनमें कमजोर होने के कारण नहीं रह जाती। विजातीय-द्रव्य उनमें इकट्ठा होने लगता है। पाचन-शक्ति खराब होने से तमाम शरीर में विजातीय-द्रव्य दौड़ता है और जहाँ उसको रोकने की ताकत नहीं मिलती, वहाँ वह जमा होने लगता है। अतएव जो जन्म से ही माता-पिता से विजातीय-द्रव्य लेकर आते हैं, उन्हें उसे जहाँ तक हो सके शीघ्र रोकना चाहिये।

गरम देश के रहने वाले बन्दरों को सर्द देश में क्षय क्यों हो जाता है, इसका भी कारण यही है कि भोजन के परिवर्तन से उनकी पाचन-शक्ति खराब हो जाती है। किन्तु लोग इसका दोष ठंडे देश की ठंडी जलवायु पर दिया करते हैं। इसमें इतनी

सम्भवतः अवश्य है कि ठंढ जलवायु से पाचन की सहन क्रिया मन्द हो जाती है। किन्तु वास्तविक कारण यही है कि उनको अपने स्वभाव के अनुकूल भोजन नहीं मिलता। बन्दरों को गरम स्थानों से ठंढे स्थानों में रखकर प्रयोग किया गया है कि भोजन की अस्वाभाविकता से उनके हाजमे खराब हो जाते हैं। मनुष्य प्राणी के बारे में भी यही कहा जा सकता है किन्तु उस की हालत साधारणतया अधिक अच्छी है क्योंकि हम लोगों को शीतल जल और वायु के सहने का अभ्यास हो जाता है। हमें दूसरे देशों में केवल अपने भोजन और रहन-सहन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

क्षयरोगियों के शरीर में गरमी की अधिकता रहती है इस लिए बढ़िया से बढ़िया चुनाव का भी भोजन वे हजम नहीं कर सकते। जो लोग बीमारों की सेवा शुश्रूषा करते हैं उन्हें मालूम है कि भिन्न-भिन्न शरीरों में पाचन में कितनी भिन्नता होती है। यदि फेफड़ों में विजातीय-द्रव्य भर गया है तो उसको विशेष हानि पहुँचने की संभावना होती है। क्योंकि ये स्थान घेरते हैं और विजातीय-द्रव्य को फेफड़ों में होकर सर की ओर आना पड़ता है। इसके अतिरिक्त एक बार फेफड़े जब विजातीय-द्रव्य से लद जाते हैं तो विजातीय द्रव्य उन्हीं पर और अधिक जाता है, वह सर की ओर नहीं जाता।

जब फेफड़ों में सड़न शुरू हो जाती है तो उसके सिर पहिले खराब होते हैं। इसका कारण यह है कि विजातीय-द्रव्य अपने उफान में सिरों की ओर उठता है। फेफड़ों के सिरे कन्धों में समाप्त होते हैं,इसलिए जब उफान शुरू होता है तो उफना हुआ विजातीय-द्रव्य सिरे की ओर चलता है और कन्धे उसे ऊपर आने से रोकते हैं, इसलिए इन्हीं सिरों को पहिले यही हानि पहुँचती है। कंधों में भी दर्द होने का यही कारण है। फेफड़ों के

खराब होने के पहिले क्षय रोग के रोगी इस कन्धे के दर्द का अनुभव करते हैं।

क्षय रोग की गुमड़ियों का असली कारण अब बतलाने की आवश्यकता है। ये गुमड़ियाँ ठीक उसी प्रकार बनती हैं जिस प्रकार बवासीर के मस्से और सरतान की गुमड़ियाँ या बिल्कुल छोटी-छोटी फुन्सियाँ। स्वस्थ पुरुष की त्वचा नरम होती है और दीर्घकालीन रोगी की शुष्क। नर्म त्वचा में विजातीय-द्रव्य को बाहर निकालने की शक्ति होती है, किन्तु शुष्क त्वचा से विजातीय-द्रव्य केवल बाहर नहीं निकलता, यही नहीं किन्तु वह जमता जाता है और उसमें रोग उत्पन्न होन की संभावना बढ़ती जाती है। आपने देखा होगा कि बहुतों को नियत समय पर चूतड़, गरदन या भुजाओं पर फोड़े निकलते हैं। ऐसे रोगी के शरीर में एक बोझ ऐसा ऐसा मालूम होता रहता है जो फोड़ों के फूटने से हलका हो जाता है। ये फोड़े क्यों निकलते हैं। जहाँ पर फोड़ा निकलने को होता है वह स्थान हमें पहिले से मालूम हो जाता है। यह लाल और सख्त हो जाता है। धीरे २ वह फूल जाता है और फोड़ा बन जाता है और उसमें दर्द होने लगता है। छूने से उसमें अधिक दर्द होता है। धीरे-धीरे यह फूट जाता है और मवाद निकलकर बाहर आ जाता है। इस प्रकार जिस विजातीय-द्रव्य से वह फोड़ा बनता है वह बाहर निकल जाता है। फोड़ा केवल एक साधन है जिनके द्वारा शरीर विजातीय-द्रव्य निकालता रहता है। प्रश्न हो सकता है कि हर एक पुरुष के फोड़े क्यों नहीं निकलते। जिन लोगों के पसीना बराबर निकलता रहता है या जिनके पाखाना-पेशाब ठीक रूप में होता है उनके शरीर से विजातीय-द्रव्य निकल जाता है, इसलिए उनको फोड़े नहीं निकलते। किन्तु जिनको पसीना नहीं आता

लड़की चंगी हो गई। यदि शुरू से उस लड़की को जल-चिकित्सा करवाया गया होता तो उसे इतने समय तक क्यों परेशान होना पड़ता।

फेफड़ों के तमाम रोगों में भीतर ऊँचे दर्जे की गरमी रहती है। श्वांस लेते और निकालते समय वायु के भागों को अलग अलग कर देने वाली एक क्रिया उत्पन्न होती है। जिस समय हम सांस लेते हैं उस समय हमारे फेफड़े हवा को आक्सीजन और नाइट्रोजन दो भागों में बाँट देते हैं। आक्सीजन भीतर रह जाता है और नाइट्रोजन शरीर की खराबियों के साथ बाहर निकल आता है। इस प्रकार फेफड़ों में अलग करने की क्रिया (जिसका परिणाम जलन होता है) बराबर चलती रहती है जिससे ऊँचे दरजे की गरमी पैदा होती है। यह गरमी फेफड़ों में वहाँ अधिक बढ़ जाती है जहाँ विजातीय-द्रव्य का उफान अधिक होता है।

शरीर के भीतर कीड़ों की उत्पत्ति उस विजातीय-द्रव्य से होती है जो उफान खाता रहता है। ये कीड़े गरमी से पड़ते हैं। क्षय में भीतरी गरमी विशेष रहती है इसलिए इस रोग में कीड़ों की वृद्धि करने की काफी सामग्री रहती है। डाक्टर कीड़ों की इस वृद्धि को भलीभाँति मानते हैं किन्तु अपने ज्ञान को वे काम में नहीं लाते। वे कीड़ों को नष्ट करने के लिए खूब प्रयत्न करते हैं किन्तु उनकी जड़ में नहीं पहुँचते। इसलिए वे असफल रहते हैं।

डाक्टरी में यह बतलाया जाता है कि हर एक रोग के कुछ कीड़े होते हैं जिनके कारण यह रोग उत्पन्न होता है। वे इस बात को भूल जाते हैं कि एक ही प्रकार के पक्षी और एक ही प्रकार के वृक्ष भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के पर रखते हैं। उसी

प्रकार सब रोगों के कीड़े भी रूप और परिणाम में भिन्न भिन्न देशों की गरमी पर निर्भर रहते हैं।

जिस पुरुष ने उपरोक्त कथन को समझ लिया है वह क्षय रोग की चिकित्सा बड़ी आसानी से कर सकता है। भीतर का टेम्परेचर नार्मल हो जाना चाहिए और शरीर की शक्ति बढ़ाना चाहिए और शरीर की असाधारण दशायें दूर करनी चाहिए। इस अभिप्राय की सिद्धि के लिये जल चिकित्सा के स्नान करना चाहिए और भोजन पर पूरा संयम रखना चाहिए। स्नान कितने समय के और कितनी बार करना चाहिए इस पर पूरा ध्यान रखना चाहिए। क्षय रोग में शरीर के भीतर प्रचंड गर्मी रहती है और वह जल्दी नहीं घटती, इसलिए रोगी की शक्ति के अनुसार अधिक समय के साथ और गिनती में भी अधिक लेने की आवश्यकता है। इस विषय में उन लोगों की राय लेनी चाहिए जिनको जल-चिकित्सा का कई वर्षों का अनुभव है। रोगी को प्रचुर धूप और प्रचुर हवा में रखने की आवश्यकता है। क्षय रोग में धूप स्नानों से बहुत लाभ होता है।

क्षय रोग में डाक्टर लोग (Tuber culin) टीका देते हैं। इससे हानि होती है। विषैला-द्रव्य जिससे टीका लगाया जाता है, विजातीय-द्रव्य पर गुँधे आट पर खमीर की तरह प्रभाव डालता है और ज्वर उत्पन्न करता है। इससे विजातीय-द्रव्य की वास्तविक उफान की दशा में परिवर्तन हो जाता है और साथ ही शरीर की गर्मी में भी परिवर्तन होता है। इसका यह परिणाम होता है कि क्षय के कीड़े जो बढ़ते थे अब और भी अधिक तादाद में बढ़ने लगते हैं। दशा और भी खराब होती जाती है। न तो शरीर से विजातीय-द्रव्य बाहर निकलता है और न बीमारी ही कम होती है। टीका एक अधूरी औषधि है और अधूरी हमेशा रहेगी। इसका भयानक हानिकारक परिणाम आगे या पीछे

शरीर पर अवश्य होता है। कुछ महीनों के पश्चात् टीके से जो खुशी हुई थी उसके स्थान में निराशा और दुख होने लगते हैं। चारों ओर से टीका के खिलाफ अब लोग बोलने लगे हैं। आज कल टीका लगाने की अब कुछ भी दिलचस्पी नहीं रह गयी,

जल चिकित्सा से क्षय रोग अच्छा हो सकता है। सम्भव है जब रोग हाथ मे निकल जाय और उस समय जल चिकित्सा की जाय तो लाभ न हो। यदि रोगी में शक्ति बाकी है, यदि उसका हाजमा एकदम नष्ट नहीं हो गया है तो वह अच्छा हो सकता है। यदि हाजमे में चिकित्सा से अन्तर पड़ता गया तो रोगी चंगा हो जायगा नहीं तो न होगा। कूने साहब ने सैकड़ों क्षयी रोग के रोगियों को चंगा किया है जिनका हाजमा धीरे धीरे सुधरने लगा था। कुछ क्षय के रोग इतने कठिन होते हैं कि बहुत समय तक कुछ लाभ नहीं होता, किन्तु फिर लाभ एक दम होने लगता है।

यदि शरीर मजबूत है तो फफड़ा और पेड़ से विजातीय द्रव्य निकलने के लिये मेहन स्नान सबसे उत्तम है। कभी कभी स्टीम बाथ या सन बाथ भी लेते रहना चाहिए। अच्छी हवा में रहना चाहिए और स्वाभाविक आहार पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

जिन रोगियों का क्षय अत्यन्त भयंकर हो गया हो उनके लिये ये स्नान अत्यन्त तीव्र होंगे। इसलिए उनको हल्के हिप बाथ लेना चाहिए। पानी का तापमान ८१ से ८६ फैरनहाइट होना चाहिए और कमरों तक पहुँचना चाहिए। शुरू में पाँच मिनट और इसके बाद जितनी देर तक उसे अच्छा लगे उतनी देर स्नान करना उचित है। एक दिन में कई बार स्नान लेना चाहिए। जब शरीर मजबूत हो जाय तब सिट्ज बाथ लेना चाहिए। बहुत दशाओं में जीवन शक्ति की कमी के कारण

लाभ कम पहुँचेगा किन्तु लगातार स्नान करने से हालत जरूर अच्छी होगी। यदि पाचन-शक्ति में उन्नति हुई तो रोग अवश्य अच्छा हो जायगा।

दमा (Asthma)—६५ वर्ष की एक स्त्री को बड़ा भयङ्कर दमा हुआ। वह एक डाक्टर की दवा करती रही जिससे उसका हाजमा खराब हो गया। उसस कहा गया कि तुमको कोई औषधि लाभ नहीं पहुँचा सकती, इसलिए जरमनी के दक्षिण प्रदेशों में रहो। रोगी दस कदम भी नहीं चल सकता था। उसन जल चिकित्सा का नाम कहीं सुन लिया था इसलिए उसन डाक्टर से कहा कि मैं यहीं मर जाना पसन्द करूँगी लेकिन दूसरे प्रदेशों को नहीं जाऊँगी। वह लुई कुने साहब के सुपुर्द की गइ। उसने उनके कहने के अनुसार चिकित्सा करना प्रारम्भ किया। उसकी पाचन शक्ति धीरे-धीरे अच्छी होने लगी। विजातीय-द्रव्य काफी तादाद में पसीने और मल मूत्र के रूप में बाहर निकला। रोगी को ठंडे स्नान दिये जाते थ और कभी कभी स्टीम बाथ। एक महीने में रोगी की दशा बदल गइ। तीन महीने में वह अच्छी हो गई।

इसी प्रकार ६० वर्ष के एक सज्जन को दमा हुआ। डाक्टरों ने जवाब दे दिया। उसने तब कुने साहब की चिकित्सा की। स्नानों से उसे रोग में कमी मालूम होने लगी। अतएव वह बड़े चाव से स्नान करने लगा। वह रात को भी उठकर कभी-कभी स्नान ले लेता था क्योंकि उसे रात में नींद नहीं आती थी। स्नान के बाद वह कुछ देर तक के लिए सो जाता था। स्नानों से उसका बलग़म काफी तादाद में निकलने लगा। हर महीने उसकी दशा सुधरती गई। एक वर्ष में वह अच्छा हो गया। और उसकी गञ्जी खोपड़ी में बाल भी निकल आये।

बढ़ा हुआ क्षय रोग

बढ़े हुए क्षय रोग से पीड़ित ३० वर्ष की एक स्त्री ने कूने साहब की चिकित्सा शुरू की। सोते समय वह मुंह से सांस लेती थी। उसकी माँ क्षय रोग से ४५ वर्ष की अवस्था में मर चुकी थी। २० वर्ष की अवस्था से लड़की को क्षय के चिह्न दिखाई देते थे। ३० वर्ष की अवस्था में उसके चेहरे की लालिमा गायब हो गई थी। उसका हाजमा खराब होता गया और पाखान से दुर्गन्धि निकलने लगी। उसके सर और दाँतों में दर्द होन लगा। और छाती और कंधों में भी दर्द पैदा हुआ। उसे मासिक धम भी कभी कई महीनों में होता था और कभी बहुत जल्दी जल्दी। कूने साहब ने उसकी चिकित्सा शुरू की। उसे ठंडे स्नान और स्टीम बाथ बतलाये गये और खुली हवा में रहने को कहा गया। इन साधनों से ६ महीनों के भीतर उसकी दशा सुधर गई और अब वह आनन्द से घूमने फिरने लगी। सर का दर्द एकदम गायब हो गया और पाचन-शक्ति बढ़ गई। वर्ष के भीतर उसको दो बार संकट के समय (Crisis) आये जिससे उसको काफी आराम हुआ। दूसरे वर्ष कुछ संकट के दो अव सर और आये और उसके बाद वह चंगी हो गई।

क्षय (Tuber Culosis)—४० वर्ष के एक सज्जन को क्षय रोग हुआ। डाक्टरों ने उसे दक्षिण इटली में रहने का आदेश किया। रोगी कूने साहब से मिला और उनकी चिकित्सा उस ने शुरू की। चार सप्ताह की चिकित्सा से उसका स्वास्थ्य सुधरने लगा। मूत्राशय और अँतड़ियों की जलन उसे शुरू हुई जिनसे ६ वर्ष पहिले वह पीड़ित हो चुका था। १५ दिनों में ये बीमारियाँ दूर गईं। स्नानों से शरीर की दशा सुधरती गई। उसे सुजाक भी था, जो दो सप्ताहों में अच्छा हो गया। फेफड़े बराबर अच्छे होते गए। १॥ वर्ष में वह बिलकुल चंगा हो गया।

हड्डियों पर गुमड़ियाँ पड़ जाना और उनका सड़ना

उपरोक्त बीमारियों से पीड़ित बहुत से रोगी जल-चिकित्सा से आराम हुए हैं। इन रोगियों को बाल्यावस्था में रिकेट (Ricket) (हड्डियों का टेढ़ा होना) की बीमारी हो चुकी थी। उनकी हड्डियाँ बड़े होने पर भी कमजोर थीं। और टूट गई थीं। युवावस्था में हड्डियाँ घुलने लगीं। टाँगों और बाजुओं की हड्डियों में मवाद आ गया था और स्पंज की तरह वे सूज गई थीं। कुछ रोगियों की भुजायें और टाँगें काट डाली गई थीं और लुई कूने के पास जाने के पहिले बहुतों की दशा असाध्य हो गई थी। जल-चिकित्सा शुरू करते ही पुरानी बीमारियाँ उमड़ने लगीं। वे सब समय से अच्छी हो गयीं।

एक लड़का कूने साहब के पास जल-चिकित्सा के लिए गया जिसके पैर के सामने की हड्डियाँ घुटने से टखने तक खुली हुई थीं और उनमें से मवाद बह रहा था। डाक्टरों ने दोनों टांगों को काटने का विचार किया किन्तु उसके माता-पिता ने इस बात को स्वीकार न किया। वे उसे कूने साहब के पास ले गये। चार सप्ताह के बाद लाभ होने लगा। घाव भीतर से भरने लगे और ऊपर त्वचा भी दुरुस्त होने लगी। ६ महीनों में दोनों पैर भर गये और दो महीने और चिकित्सा करने से वह चंगा हो गया।

१० वर्ष के एक बच्चे के घुटने में एक गुमड़ी पड़ गई। घुटने को काटने की सलाह दी गई। उसने जल-चिकित्सा आरम्भ किया। नौ महीने में उसका रोग अच्छा हो गया और उसके बाद ३ महीनों में वह बिल्कुल चंगा हो गया।

ल्यूपस (Lupus)—४१ वर्ष की एक स्त्री थी। उसको मुख के ल्यूपस का रोग हो गया। ३० वर्ष तक वह इस रोग से पीड़ित रही और उसे कोई लाभ न हुआ। उसका चेहरा मवादह

मालूम होता था। जिधर से वह निकल जाती थी उधर के लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। वह कूने साहब के पास गई। और उन्हीं का इलाज उसने शुरू किया। उन्होंने चेहरे को देखकर बतलाया कि मैं आपको अच्छा कर सकता हूँ। १५ रोज में उसके चेहरे का रङ्ग बदलने लगा। उसकी पाचन-शक्ति सुधरती गई। पाखाने और पेशाब के रास्ते विजातीय द्रव्य निकलने लगा। ७ सप्ताहों में रोगी की त्वचा भी ठीक हो गई। विजातीय-द्रव्य शरीर के सामने के भाग में था। इसलिए वह जल्दी अच्छी हो गई। यदि विजातीय-द्रव्य पीछे के भाग में होता तो उतनी जल्दी अच्छा होना कठिन था।

बहुत से रोगियों को दो चार सप्ताह में फायदा नहीं मालूम होता इसलिए वे चिकित्सा यह कहकर छोड़ देते हैं कि इससे कोई लाभ नहीं हो रहा है। वे नहीं समझते कि उनका रोग इतना भयङ्कर है कि चंगा होने के लिए उनको अधिक समय की आवश्यकता है। ऐसे रोगियों को धैर्य की जरूरत है।

एक स्त्री मुख के ल्यूपस से पीड़ित थी। वह मुँह पर परदा डालकर बाहर निकलती थी। १५ वर्ष तक वह इस रोग से पीड़ित रही। उसने अनेक दवायें कीं किन्तु किसी से कुछ लाभ न हुआ। वह कूने साहब के पास गई और उनकी चिकित्सा उसने प्रारम्भ किया। रोग धीरे धीरे अच्छा होने लगा और शीघ्र वह चङ्गी हो गई।

७—रीढ़ की हड्डी का रोग और बवासीर

कई वर्षो तक लगातार बीमारी से रीढ़ की हड्डी का रोग उत्पन्न होता है। यह रगों में विजातीय-द्रव्य भर जाने से होता है। इस रोग में स्वप्नदोष बहुत होते हैं। रीढ़ की रगें फूल जाती हैं और उन पर से मनुष्य का अधिकार लुप्त होता जाता है। सबसे पहले उसके पाँव उसको जवाब दे देते हैं। कमर

के समीप का हिस्सा अकड़ जाता है और वहाँ एक प्रकार की शीत वैग्न हो जाती है। रोग के बढ़ने पर कटिभाग में एक वेदना उत्पन्न होती है। यह बड़ी दुखदाई होती है।

रीढ़ की हड्डी का रोग जब बढ़ जाता है तो उसका अच्छा होना कठिन है। जहाँ तक हो सके बीमारी के प्रारम्भ में ही चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिए। जिस मकान में आग लगे तो उसको शुरू में बुझाना सरल है किन्तु आग जब बढ़ जाती है तो उसका बुझाना असम्भव है।

एक नौजवान की रीढ़ की हड्डी का रोग हुआ। उसकी दोनों टाँगें सुन्न पड़ गईं। वह बहुत दिन तक इलाज करता रहा किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। उसका हाज़मा बिगड़ चुका था। पेशाब छूट पड़ता था। उसका उठना-बैठना मुश्किल था। संयोगवश लोग उसे कूने साहब के पास ले गये। उन्होंने उसका इलाज करना शुरू किया। प्रारम्भ में उसे चार स्नान कराये गये और सूखा स्वाभाविक भोजन दिया गया। दो महीने में दशा कुछ सुधरने लगी और वह कुछ देर तक स्वयं खड़ा होने लगा। नौ महीने में वह कमर में इधर उधर टहलने लगा। दो महीने बाद वह अच्छा हो गया। इस रोगी ने लगकर अक्षरशः कूने साहब के आदेशों का पालन किया और इसीलिए वह अच्छा हो सका।

बवासीर की पीड़ा

मलावरोध की बीमारी और पीठ के हिस्से पर विजातीय द्रव्य के संचित होने से यह रोग उत्पन्न होता है। बवासीर एक प्राचीन रोग का सूचक होती है जो पेट की खराबी से पैदा होता है। बवासीर के रोगियों की पाचन-शक्ति भी कमज़ोर होती है।

२७ वर्ष के एक नौजवान को बवासीर हुई। वह कूने साहब के पास इलाज के लिये गया। उसके सर के पीछे गुमड़ियाँ पड़ गई थीं और उसका सर विजातीय द्रव्य के कारण कुछ बड़ा हो

गया था। इसके सिर में बराबर पीड़ा हो रही थी। यह बाल छटपटा रहा था। कूने साहब ने उसका इलाज करना शुरू किया। उसको ठंडे स्नान कराये गये और स्वाभाविक भोजन खाने को दिया। पहले सप्ताह में उसके सर का दर्द दूर हुआ। गुमुड़ियाँ भी कम हुईं और पाचन-शक्ति सुधरने लगी। दूसरे महीने में गुमुड़ियाँ जाती रहीं और उसका सर छोटा हो गया ६ महीने में उसकी दशा बहुत कुछ सुधर गई।

८—हृदय के रोग और जलन्दर

यदि हम पक्षपात छोड़कर हृदय की रोगों की खोज करें तो हमें मालूम होगा कि ये रोग भी विजातीय द्रव्य के भार से उत्पन्न होते हैं। इसलिए इन रोगों को भिन्न-भिन्न भागों में विभाजित करना बिल्कुल निरर्थक है। यदि विजातीय-द्रव्य बाईं ओर है तो बाईं ओर में विजातीय-द्रव्य की अपेक्षा रोग के बढ़ने की अधिक सम्भावना होती है।

जब हृदय में विजातीय-द्रव्य का भार होता है तो सारे शरीर में भी विजातीय-द्रव्य के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। इस रोग में सारा शरीर चरबी से भर जाता है और हृदय की रगें विजातीय-द्रव्य से इस कदर मोटी पड़ जाती हैं कि ये अपना साधारण काम भी करने में असमर्थ होती हैं। हर एक मनुष्य को मालूम है कि जब शरीर में सूजन होती है तो शरीर के पीड़ा में रुकावट पड़ती है। इसी प्रकार हृदय के पट्ठों में विजातीय-द्रव्य के कारण जब तनाव हो जाता है तो उसकी चाल अनियमित हो जाती है। जब हमको किसी आपत्ति का धक्का लगता है, या शारीरिक परिश्रम अधिक करना पड़ता है, जिससे हृदय की ओर रुधिर का प्रवाह अधिक होने लगे तो उस समय हम को फौरन मालूम होता है कि हृदय पूर्ण रीति से

अपना काम नहीं करता। उस समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे विजातीय-द्रव्य हृदय पर दबाव डाल रहा हो।

यदि हृदय के रोग का असली कारण दूर न किया गया या दवाओं के सेवन से विषैला पदार्थ शरीर में और अधिक भर गया तो रोगी की हालत और भी अधिक खराब हो जाती है और उसको जलोदर (Dropsy) रोग हो जाता है। जलोदर रोग में जो पानी शरीर में मिलता है वह वास्तव में विजातीय-द्रव्य ही है। इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि शरीर में शुद्ध रक्त उत्पन्न होने की शक्ति नहीं रहती। वह रस जो रुधिर को उत्पन्न करते हैं विकृत पदार्थ के मौजूद रहने से अपने रूप को बदल देते हैं।

जलोदर रोग का एक रोगी एक बार कूने साहब के पास गया। उसका शरीर जल से भरा हुआ था और वह रबड़ के सदृश फूला हुआ प्रतीत होता था। पानी का भीतरी दबाव इतना अधिक था कि टाँगों की त्वचा से जल उछला पड़ता था। जहाँ रोगी बैठता था वह पानी से तर हो जाता था। रोगी एक मक्खन बेचनेवाला मनुष्य था। उसे मक्खन की कई श्रेणियों में रखने के लिए प्रतिदिन बहुत-सा मक्खन चखना पड़ता था। टाँगों से जो पानी निकलता था उसमें मक्खन की महक प्रत्यक्ष मालूम होती थी। मक्खन खाते-खाते उसका मेदा कमजोर हो गया और उसके शरीर में रोग उत्पन्न होता गया। मक्खन अधपचा रह जाता था जिससे कि वह विजातीय-द्रव्य उत्पन्न करने लगा। वह आदमी बाईं करवट सोने का अभ्यासी था अत: मक्खन उसी ओर इकट्ठा होने लगा। धीरे-धीरे हृदय के अन्दर और सारे शरीर में मेद (fat) बढ़ गया। प्रारम्भ में उसको हृदय की बीमारी हुई। और उसके बाद उसको जलोदर हो गया। उसने अनेक औषधियाँ की किन्तु उससे कोई लाभ

नहीं हुआ। कूने साहब ने उसको ठंढा स्नान और स्वाभाविक रहन-सहन बतलाया। किन्तु वह उनके आदेशों के अनुसार चल न सका जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

शरीर में जल इकट्ठा होने का कारण; पेडू में एक प्रकार की सड़ी हुई दशा का हो आना है। यह दशा में इतनी धीरे धीरे प्राप्त हो जाती है कि रोगी को मालूम तक नहीं पड़ता। जब रोगी को साँस लेने में कठिनाई होती है या उसे हृदय में पीड़ा होती है तब वह इस रोग का अनुभव करता है।

एक रोगी को बहुत दिनों से जलोदर रोग हो गया। उसकी दशा बड़ी शोचनीय थी। वह कूने साहब के पास गया और उनके परामर्श से जल चिकित्सा करने लगा। सप्ताह में पानी सूख गया और उसको शरीर के अन्दर गर्मी मालूम पड़ने लगी। चौथे सप्ताह में उसको बहुत से दस्त होने लगे जिससे बड़ी दुर्गंधि निकलती थी। यह दशा तीन दिन तक कायम रही। छठे सप्ताह के बाद वह एक दम चङ्गा हो गया।

जलोदर का रोगी उसी हालत में अच्छा हो सकता है जब वह ठीक नियम के अनुसार जल चिकित्सा करे और बिना किसी मदद के उसको पसीना निकले। उस समय विजातीय द्रव्य के निकलने की ओर पाचन-शक्ति के सुधरने की सम्भावना हो सकती है। यदि शरीर की शक्ति एक दम निकल गई या पाचन-शक्ति बिलकुल ही खराब हो गई तो यह रोग नहीं अच्छा हो सकता।

६—मूत्राशय और गुर्दों के रोग

सम्पूर्ण रोगों की जड़ शरीर के अन्दर विजातीय-द्रव्य का इकट्ठा होना है। बहुत सी ऐसी हवायें (gases) हैं जो मेदे में पाचन-क्रिया के समय पैदा होती हैं। यह हवायें एक ओर तो भोजन को मेदे से आगे बढ़ाती हैं और दूसरी ओर वे पाचन

क्रिया की नाली की दीवारों से निकलकर सारे शरीर और रुधिर में मिल जाती हैं। यह बात एक उदाहरण से स्पष्ट हो सकती है। जल पृथ्वी पर समुद्र, झीलों और नदियों में होता है। मानों यह पृथ्वी पर जल की नालियाँ हैं जो मनुष्य के देह के भीतर रुधिर के नालियों के समान हैं। पृथ्वी पर इतना पानी होते हुए भी जल भाप के रूप में सम्पूर्ण वायु में और पृथ्वी के अन्य भागों में भरा हुआ है। इसी प्रकार यद्यपि भोजन खाये जाते हैं और जल पिया जाता है किन्तु वायु रूप में वे सम्पूर्ण शरीर में भरे हुए हैं। इसी कारण जब हम मदिरा पीते हैं तो उसका प्रभाव सारे शरीर पर और सर में विशेष रूप से मालूम होता है। इस शराब की बहुत सी हवायें त्वचा के द्वारा बाहर निकल जाती हैं। जिसके शरीर में अधिक विजातीय-द्रव्य है उसकी हवाओं में बड़ी दुर्गन्धि होती है। नीरोग मनुष्य के पसीने में बुरा प्रभाव उत्पन्न करने वाली कोई बात नहीं रहती।

शरीर के भीतर यह हवायें गुर्दों के द्वारा भी जाती हैं। गुर्दे उनमें जल मिलाकर मूत्राशय में पहुँचाते हैं। जब मूत्राशय भर जाता है तो पेशाब करने की इच्छा होती है। जब इच्छा हो तो पेशाब उसी समय करना चाहिए नहीं तो बड़ी हानि होती है। सभ्य समाजों में बैठे हुए लोग पेशाब रोक लेते हैं। परिणाम इसका यह होता है कि जो विजातीय-द्रव्य शरीर के बाहर निकलना चाहिए वह गुर्दों और मूत्राशय में रुक जाता है। यदि मूत्राशय से पेशाब न निकाला गया तो उसमें जोश उत्पन्न हो जाता है। मूत्राशय में गरमी अधिक उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण मूत्र का पतला भाग उड़ जाता है और उसमें का नमक शेष रह जाता है। ऐसा होते होते गुर्दों की पृथक की हुई वस्तुएँ मूत्राशय में आने से रुक जाती हैं और इसी प्रकार

के परिवर्तन गुर्दों में भी होने लगते हैं। प्राय: हम देखते हैं कि एक बार पेशाब करने की इच्छा हम रोक देते हैं तो दूसरी बार जब हम पेशाब करना चाहते हैं तो पेशाब नहीं निकलता। वह पेशाब अवश्य शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में चला जाता है। उसमें का एक हिस्सा उबाल के कारण गैस बन जाता है और खून में मिल जाता है। द्रव पदार्थ छोटे-छोटे टुकड़ों में गुर्दों और मूत्राशय में जमा होते रहते हैं। इससे एक रोग उत्पन्न होता है जिसे पथरी कहते हैं।

पथरी—

पथरी का एक कारण बतलाया जा चुका। इसका दूसरा कारण अस्वाभाविक भोजन है। पेशाब जो गुर्दों में रुकता है वह भाप बनकर उड़ जाता है और छोटे-छोटे चमकदार टुकड़े आपस में मिलते जाते हैं। जब तक वे छोटे होते हैं तो वे गुर्दों की नालियों के द्वारा पेशाब के साथ बिना किसी कष्ट के मूत्राशय में चले जाते हैं किन्तु वे जब बड़े हो जाते हैं तो मूत्राशय में जाते समय पीड़ा उत्पन्न करते हैं। इनसे नालियों के झिल्ली को हानि पहुँचती है, यही हालत मूत्राशय की भी होती है।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि मूत्र के रुकने से पथरी नहीं पड़ती। सारा पेशाब भाप बनकर शरीर में मिल जाता है जैसे गुमुड़ियाँ आदि।

पेचिस और कब्ज

पेचिस या कब्ज भी विजातीय-द्रव्य से उत्पन्न होता है। इस हालत में पेशाब की यही दशा होती है। अन्तर केवल इतना होता है कि रुकावट प्रत्यक्ष रूप में नहीं होता किन्तु अप्रत्यक्ष रूप में अर्थात् त्वचा के असाधारण रंग से, गुमड़ी से, सिर की पीड़ा से, रसौली से, पथरी से, इत्यादि रोग से मालूम होता है।

बहुमूत्रता

यह रोग आँव से बहुत मिलता-जुलता है और प्रत्यक्ष रूप में दिखलाई पड़ता है। इस रोग में भीतरी ज्वर के कारण जलन पैदा होती है और व्याकुल करनेवाली प्यास भी लगती है। इस रोग में न तो कब्ज होता है और न पथरी या रसौली बनती है किन्तु विजातीय-द्रव्य शीघ्रता से निकलता है और आमाशय के अनेक प्रकार के रसों में सड़न पैदा होती है। पेशाब शरीर मे जोश खाया हुआ गन्दी और मीठी शकल में बाहर निकलता है। पथरी और बहुमूत्रता वास्तव में एक ही है केवल बाहरी चिन्हों में अन्तर होता है। इस रोग को जल-चिकित्सा से बहुत लाभ होता है।

जिस प्रकार जल-चिकित्सा से बहुमूत्रता को लाभ होता है उसी प्रकार पथरी को भी पहुँचता है। पथरी के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं और रोगी को पेशाब बहुत तादाद में होता है जिसे देख कर उसे आश्चर्य होता है। इसका उत्तर बहुत ही सरल है। पेशाब जो पहले भाप के रूप में शरीर भर में व्याप्त था, वह अपने पुराने मार्ग द्वारा पूर्व स्थान में फिर वापस आता है और शरीर से मूत्र के रूप में निकलता है।

पथरी की तरह मूत्र प्रवाह (Bedwetting) अर्थात् मूत्र का न रुकना, आँख की जलन, मूत्राशय की जलन आदि रोग जल-चिकित्सा से बहुत जल्द आराम होता है।

यकृत रोग, जिगर की पथरियाँ और पाण्डु रोग

ये रोग शरीर के दाहिने ओर विजातीय-द्रव्य के जमा होने से उत्पन्न होते हैं। ऐसे रोगियों का पसीना दुर्गन्ध-युक्त होता है और उनके तलुवे पसीजते रहते हैं। त्वचा का रंग काला पड़ जाता है। जब बीमारी बढ़ जाती है तो पसीने का निकलना

बन्द हो जाता है। उस दशा में रोगी की हालत खराब होती जाती है। कारण इसका यह है कि जो पसीना त्वचा से निकलता था वह शरीर के अन्दर ही रह जाता है और उससे सरतान आदि भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं। बहुत से लोग बहुत के पसीने को बन्द करने की कोशिश करते हैं, इससे बड़ी हानि होती है। पसीने का रोकना दवा के द्वारा उतना ही भयानक है जितना भयानक किसी बड़े नगर के बड़े गंदे नाले का रोकना है, जिसमें अनकों छोटी छोटी नालियाँ आकर मिलती हैं।

मकड़ी और त्वचा के रोग

कूने साहब ने इन रोगों से पीड़ित अनेक रोगियों को जल-चिकित्सा से अच्छा किया है। ये बीमारियाँ त्वचा या पैर के पसोन क रुकावट मे उत्पन्न होती हैं। मकड़ी का रोग या तो शुष्क होता है या उसमें से एक प्रकार का जल बहता रहता है। शुष्क मकड़ी का रोग बहुत देर में आराम होता है। लड़कों को यह रोग अधिक होता है। टीका आदि से जा बीमारियाँ बच्चों की दबा दी जाती हैं वे ही आगे चलकर इस रोग को उत्पन्न करती हैं।

२४ वर्ष का एक नवयुवक इस रोग से पीड़ित था। उसके सर और उसकी गर्दन पर इस बीमारी ने विशेष रूप से आक्रमण किया था। बहुत से मल्हम लगाये गये और बहुत सी औषधियों का सेवन किया गया किन्तु उनसे कुछ भी लाभ नहीं हुआ। वह अन्त में कूने साहब के पास गया और उनकी सलाह से जल चिकित्सा करने लगा। कुछ समय में उसकी पाचन-शक्ति सुधर गई और उसका रोग भी घटने लगा। १६ दिनों में उसे बहुत लाभ हुआ और कुछ महीनों की चिकित्सा से वह बिलकुल चंगा हो गया।

१०—सब प्रकार के सर की पीड़ा

जिस स्थान पर दर्द होता है लोग प्रायः उसी भाग की पीड़ा का कारण ढूंढ़ने लगते हैं। सर दर्द के विषय में ऐसा करना एक भारी भूल है, क्योंकि सर में दर्द पेड़ू की खराबी से पैदा होता है। यह रोग पेड़ू में उत्पन्न होने के कई वर्ष बाद सर में मालूम होता है। अनुभव से यह बात अच्छी तरह जाँच ली गई है कि शरीर के दाहिने या बाईं ओर विजातीय-द्रव्य के एकत्र होने से जब वह ऊपर की ओर उठता है तो आधी सीसी उत्पन्न होती है। किन्तु मस्तिष्क का क्षीण होना या मस्तिष्क में जलन होना पीठ में एकत्रित विजातीय-द्रव्य पर निर्भर रहता है। जिन लोगों को सर की बीमारी होने को होती है उनकी पाचन-श में विकार कई वर्ष पहले उत्पन्न हो जाता है। इसके पश्चात् बधामीर और पेड़ू के भीतर हर प्रकार की गुमुड़ियाँ मालूम होने लगती हैं। आज-कल बच्चों की यह दशा देखने में आती है। जब पेड़ू की गुमुड़ियाँ गायब हो जाती हैं तो मनुष्य सर की व्याधियों से पीड़ित हो जाता है। जो गुमुड़ियाँ पहिले पेड़ू में थीं वे अब सर के बगल-बगल उत्पन्न हो जाती हैं।

यदि बोझा अधिक न हुआ तो विजातीय-द्रव्य गरदन में, भुजाओं और छाती के नीचे गुमुड़ियों की सूरत में जमा हो जाता है। ऐसा न समझना चाहिए कि विजातीय द्रव्य शरीर के भीतर ही भीतर कड़ी और गुमुड़ियों की सूरत में चलता है॥ इसके विरुद्ध शरीर उस द्रव्य को वायु के रूप में तबदील कर देता है जिससे वह बहुत जल्द एक अंग से दूसरे अंग में पहुँच जाता है॥ विजातीय-द्रव्य गुमुड़ियों से हटकर सर की ओर चलता है।और यदि वहाँ वह जम गया और गिल्टियाँ पैदा हो गईं तो वहाँ एक रोग उत्पन्न हो जाता। है जिसे मस्तिष्क का क्षय रोग कहते हैं। पहिले गिल्टियाँ पेड़ू में थीं। अब वे

सर में पहुँच जाता है, इसकी सत्यता इस बात से सिद्ध हो जाती है कि जब जल चिकित्सा के स्नान लिए जाते हैं तो सर की गिल्टियाँ सूख जाती हैं और पेड़ू में गिल्टियाँ पैदा हो जाती हैं। जिस जिस स्वरूप से विजातीय-द्रव्य किसी सीमा तक पहुँचा है उस उसी स्वरूप में बाहर निकलने के पहिले फिर जाना पड़ता है। जब पेड़ू का गिल्टियाँ बाहर निकल जाती हैं तब सर की पीड़ा दूर होती है। अधिक रोगियों में ऐसा ही होता है किन्तु कुछ रोगियों में ऐसा भी देखा गया है कि जिनको बवासीर हो गई थी, उनके पेड़ू में गिल्टियाँ पड़ गई थीं किन्तु उन्हें सर का दर्द कभी नहीं हुआ। वास्तव में यह अन्तर विजातीय-द्रव्य की स्थिति पर निर्भर है।

विजातीय-द्रव्य जब सामने या बगल में होता है तो गुमुड़ियाँ सर की ओर नहीं खिसकती हैं, यदि वे खिसकीं भी तो गरदन और फेफड़ों पर असर डालती हैं। किन्तु जब गुमुड़ियाँ पीछे के हिस्से में होती हैं तो वे सर पर अपना प्रभाव डालती हैं। मुखाकृति विज्ञान से मालूम हो गया है कि विजातीय-द्रव्य जब रुक जायगा, उस समय यदि जल-चिकित्सा की गई तो वह सर में आता है और उसमें दाने पड़ जाते हैं और वे जलन उत्पन्न करते हैं। उस समय यदि उसमें जोश पैदा हुआ तो ज्वर आ जाता है। डाक्टरों से पूछिये तो वे कहते जरूर हैं कि सर में जलन है किन्तु उसका कारण नहीं बतला सकते। वास्तव में पेड़ू की खराबी से सर की जलन उत्पन्न होती है। कूने साहब का मत है कि सर की जितने प्रकार की खराबियाँ पैदा हैं वे सब पेड़ू की खराबी से पैदा होती हैं। कूने साहब ने जल-चिकित्सा से सर के रोग से पीड़ित सैकड़ों रोगियों को चंगा किया है।

सर के दर्द और आधा सीसी को एक ही स्नान के बाद

लाभ पहुँचता है। कुछ लोग ऐसे मिलते हैं जिनके सर में दर्द रोज उठता है। शोक है कि वे वास्तविक कारण को नहीं समझते, केवल बाहरी दवा लगा लगाकर उसे अच्छा करना चाहते हैं, मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यदि वे स्वाभाविक आहार के साथ स्नान करें तो उनके सर का दर्द हमेशा के लिये दूर हो सकता है। ऐसे रोगियों का पेड़ में विजातीय द्रव्य की अधिकता के कारण समय अधिक लगता है।

एक मनुष्य मस्तिष्क के क्षीण होने के रोग से पीड़ित था। उसने बहुत से डाक्टरों की दवा की किन्तु उसका रोग बजाय अच्छा होने के और अधिक बढ़ गया। शुरू-शुरू में उसके सर में कठिन पीड़ा थी किन्तु धीरे धीरे उसे मस्तिष्क की क्षीणता की बीमारी हो गई। वह कूने साहब के पास गया और उसने जल चिकित्सा करने की प्रार्थना की, उसका हाजमा खराब हो चुका था। उसने कूने साहब के आदेशानुसार चिकित्सा प्रारम्भ की। उसको दिन में कई स्नान करने के लिये बतलाये गये और स्वाभाविक भोजन करने और खुली हवा में घूमने के लिये कहा गया। सर की गुमड़ियाँ धीरे धीरे लोप हो गईं और कुछ समय में वह बिल्कुल चंगा हो गया।

११—स्नायु और मन की बीमारियाँ

निद्रा का न आना

बीमारियों की एकता स्नायु की और मन की बीमारियों से सम्बन्ध रखती है। आजकल स्नायु की बीमारियाँ बहुत देखने में आती हैं। इन बीमारियों को अगणित नाम दिये जा रहे हैं और उनकी चिकित्सा का प्रबन्ध भी किया जा रहा है। सब रादद, आत्मघात, बातशूल, वहम मिजाज, पित्तोन्माद, मिर्गी, पागलपन, मधु सकता, लकवा आदि ऐसी बीमारियाँ हैं जिन्हें

सब जानते हैं। इसी प्रकार की और भी बहुत सी बीमारियाँ हैं जिनके उत्पन्न होने का एक ही कारण है।

स्नायु के विकारों के साथ-साथ न मालूम कितने रोग देखने में आते हैं किन्तु उनसे वास्तव में बीमार का वास्तविक पता नहीं लगता। किन्तु जब हम बीमारी की दशा पर ध्यान पूर्वक विचार करते हैं तो मालूम होता है कि उसे आंतरिक परेशानी रहती है। रोगी को एक प्रकार की अभाव और अकथनीय व्याकुलता मालूम होती है किंतु वह उसका कारण नहीं जानता और अपने रोग को स्वीकार भी नहीं करता।

एक आदमी बड़ा वाचाल होता है और दूसरा मितभाषी। कुछ लोगों को निद्रा नहीं आती और कुछ खूब सोते हैं। कुछ अपने जीवन से इतने ऊब जाते हैं कि आत्महत्या करने पर उतारू हो जाते हैं। कुछ पागल होते हैं और कुछ लकवे की बीमारी से पीड़ित रहते हैं। इन बीमारियों से यह बात सूचित होती है कि मनुष्य का अपनी इन्द्रियों पर अधिकार नहीं रह जाता। हजारों उनकी दवायें की जाती हैं किन्तु ऐसी बीमारियाँ अच्छी नहीं होतीं। ये जीवन के साथ ही छूटती हैं।

इनके लिए जो औषधियाँ की जाती हैं वे उन बीमारियों को और भी अधिक बढ़ा देती हैं। धीरे धीरे मनुष्य के अङ्ग और प्रत्यंग ढीले पड़ते जाते हैं और वह मर जाता है।

हमारी एक बहिन थी, जिसे पागलपन का रोग हो गया था। वह कभी रोती, कभी चिल्लाती और कभी चुपचाप बैठी रहती थी। न मालूम कितनी औषधियाँ की गईं किन्तु अन्त में उसकी मृत्यु हो गई।

स्नायु की बीमारियों से डाक्टर भी अब घबड़ा उठे हैं और उनका अच्छा करना अब उनकी शक्ति के बाहर हो रहा है। अतएव अब वे कहने लगे हैं कि भाई इसे पहाड़ पर ले जाओ,

इसे अमुक स्थान पर ले जाओ, इसे अमुक-अमुक भोजन खाने के लिए दो आदि। इससे भी मनवांछित लाभ नहीं होता, किसी न किसी रोगी में कुछ फायदा हो जाता है।

लुई कूने की रिपोर्टों से आपको मालूम होगा कि स्नायु की बीमारियों को जल-चिकित्सा ने किस प्रकार लाभ पहुँचाया है। हमारे शरीर में दो प्रकार के स्नायु होते हैं, एक तो वे हैं जो हमारी इच्छा-शक्ति के आधीन हैं और दूसरे वे हैं जो इच्छा शक्ति के आधीन नहीं हैं। इच्छा शक्ति के आधीन न रहनेवाले स्नायु साँस लेने में, पाचन-क्रिया में और खून के दौरान में पाये जाते हैं। इन स्नायुओं में जब विकार आ जाता है तब स्नायु सम्बन्धी बीमारी पैदा होती है।

वास्तव में बात यह है। विजातीय-द्रव्य के इकट्ठा होने से शरीर के कोठे विकृति हो जाते हैं। कोठों के विकृति होने से स्नायु विकृति होते हैं। स्नायुओं के सम्बन्ध ढीले पड़ जाते हैं और उनके संबंध ढीले पड़ जाने से स्नायु की बीमारी होती है। जिस प्रकार सब बीमारियों में पाचन-शक्ति खराब हो जाती है उसी प्रकार स्नायु की बीमारियों में भी पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है।

साँस लेने में, खून के संचार में और पाचन-शक्ति में जो बीमारियाँ होती हैं वे बहुत धीरे-धीरे उत्पन्न होती हैं। इस दशा में भी स्नायुओं पर असर पड़ता है और वे भी रुग्ण हो जाती हैं। इन स्नायुओं पर हमारी इच्छा-शक्ति का कोई प्रभाव नहीं होता। बल्कि उनका सम्बन्ध फेफड़े, दिल, मेदा, गुरदे, आँतें और मूत्राशय से होता है जो अपना काम आपसे आप करते रहते हैं। मेदे की, गुरदे की, मूत्राशय की अथवा दिल की बीमारी हमें उस समय तक नहीं मालूम होती जब तक उनसे सम्बन्ध रखने वाली रगें विजातीय-द्रव्य से भर नहीं जातीं। अतएव जब तक पाचन से सम्बन्ध रखनेवाली रगें विकार से भर नहीं

खाती तब तक मनुष्य की पाचन शक्ति खराब नहीं होती।

स्वस्थ होने के लिए पाचन-शक्ति का ठीक होना अत्यंत आवश्यक है। शरीर भर में विजातीय-द्रव्य मन्दाग्नि से उत्पन्न होता है। सब प्रकार की बीमारियाँ या तो मंदाग्नि से पैदा होती हैं या पैतृक होती हैं, किसी भी बीमारी का यह एक साधारण कारण है। शरीर में जब तक बल रहता है तब तक वह कठिन-कठिन बीमारियों द्वारा विजातीय-द्रव्य को निकालने का प्रयत्न करता है। जब बल घट जाता है तब बीमारियाँ गुप्त रूप से उत्पन्न होती हैं और स्नायु और दिमाग को खराब कर देती हैं। स्नायु की बीमारियों में भी दूसरी बीमारियों की तरह ठंडक और गर्मी मालूम होती है जो आन्तरिक ज्वर के कारण उत्पन्न होते हैं।

अतएव हम इस परिणाम में पहुँचते हैं कि स्नायु की बीमारियाँ दीर्घकालीन रोग को सूचित करती हैं। अतएव इसको इस प्रकार कहा जाय कि स्नायु की बीमारियाँ उसी प्रकार उत्पन्न होती हैं जिस प्रकार चेचक, खसरा, रक्त-ज्वर, डिफ्थीरिया, गरमी, और उनका इलाज भी उसी प्रकार होता है जिस प्रकार इन रोगों का या इसमें कोई हानि नहीं है।

"विजातीय-द्रव्य से हरएक प्रकार की बीमारियाँ पैदा होती हैं" इस सिद्धान्त का जिसने समझ लिया है वही इलाज भी कर सकता है। जिस प्रकार एक सेनापति उसी सेना के लोगों को अपने वश में कर सकता है जिस सेना के सिपाहियों को वह भलीभाँति जानता है। जो सेनापति अपनी सेना के सिपाहियों को नहीं जानता, उसकी पराजय अवश्य होती है। किसी रोग के विशेषज्ञ होने से काम नहीं चलता। विशेषज्ञ लोग प्रायः गोता खाते हैं, जब तक वे उन नियमों को न समझें जिनसे शरीर की क्रिया चलती है।

जो सम्पूर्ण सृष्टि का एक अभेद्य विश्व समझता है वही

सृष्टि के चमत्कारों को समझ सकता है और उसके नियमों से लाभ उठा सकता है। प्रायः यह देखने में आता है कि गरमी के कारण प्रकृति एक ही द्रव्य को भिन्न भिन्न स्वरूपों में प्रकट करती है। देखिये गरमी की न्यूनाधिकता से पानी, कोहरा, भाफ और बादल की सूरत में दृष्टिगोचर होता है।

स्नायु-सम्बन्धी रोगों के कारणों को डाक्टरी-चिकित्सा न तो कुछ समझती है और न उनका इलाज ही कर सकती है। बहुत-सी दशाओं में तो स्नायु की बीमारियाँ डाक्टरों के समझ में आती ही नहीं। स्नायु के रोगी जब डाक्टरों के पास गए तो उन्होंने कहा—अरे तुमको कोई बीमारी नहीं है। किस चक्कर में पड़े हो। वे रोग से अन्त में पीड़ित हुए और जल चिकित्सा द्वारा अच्छे हुए।

जो जल चिकित्सा पर विश्वास करने वाले हैं वे एक सिद्धांत से रोग का कारण निर्धारित करके रोगी को अवश्य चंगा करते हैं। उसी सिद्धांत से जल-चिकित्सा के डाक्टर स्नायु की बीमारियों को कई वर्ष पूर्व केवल चेहरा देखकर मालूम कर लेते हैं। पीठ पर विजातीय द्रव्य का इकट्ठा होना वास्तव में स्नायु सम्बन्धी बिमारियों का मुख्य लक्षण है।

मानसिक रोग—

मानसिक रोगों के विषय में भी यही बात कही जा सकती है जो स्नायु-संबंधी रोगों के विषय में कही गई है। डाक्टर लोग मानसिक रोगों के तत्वों को नहीं समझते। जो कारण साधारणतया बतलाये जाते हैं उनमें वास्तव में मानसिक रोग नहीं उत्पन्न होते। किंतु वे कई वर्षों के संचित विजातीय-द्रव्य से उत्पन्न होते हैं। अस्वाभाविक जीवन और पाचन शक्ति की खराबी से विजातीय-द्रव्य धीरे धीरे संचित होता रहता है और उसी से मानसिक बीमारियाँ पैदा होती हैं। जिन मनुष्यों का रहन-सहन

स्वाभाविक होता है वे मानसिक रोगों में नहीं फँसते। जिस मनुष्य के सर का पिछला भाग जितने विजातीय-द्रव्य से भरा होगा उसको उतनी ही भारी मानसिक बीमारी होगी। वास्तव में मानसिक बीमारियों की बहुत कुछ जिम्मेदारी हमारी आधुनिक सभ्यता है जिसके चक्कर में पड़कर लोग प्राकृतिक नियमों का बार-बार उल्लंघन करते रहते हैं। पानी के बदले लोग नाना प्रकार की शराब चमकते हुए ग्लास में रखकर पीते हैं। बढ़िया-बढ़िया सिगार पीते हैं। जिस कमरे में पाँच मनुष्यों को रहना चाहिए उसमें दस मनुष्य रहते हैं। इस प्रकार अस्वाभाविक रहन-सहन से यदि मानसिक रोग उत्पन्न हो तो इसमें क्या आश्चर्य है।

देहातों में जहाँ के निवासी खुली हवा में रहते हैं और सादा भोजन करते हैं,इन बीमारियों का नाम भी नहीं है। यदि मिलती भी हैं तो उन्हीं लोगों की सन्तानों में जिनके पिता शराबी हैं। ऐसा बच्चा पैतृक विजातीय-द्रव्य के भार से पीड़ित रहता है। जिससे भयानक बीमारी किसी-न-किसी समय उत्पन्न होती है।

शराब पाचन क्रिया पर इतना भार डालती है कि दूसरे काम करने की शक्ति शरीर में शेष नहीं रह जाती। इसी कारण शराबियों को बड़ी सुस्ती और निद्रा मालूम होता है। पाचन-क्रिया से जो गैस उठती है वह मानसिक रोग धीरे धीरे पैदा करती रहती है। पिता के शराब से उत्पन्न होने के समय जो संतान पैदा होती है वह या तो पागल होती है या पागल होने के पहिले मृत्यु को प्राप्त होती है। सब प्रकार के मानसिक रोग पैतृक या साधारण एकट्ठा हुए विजातीय-द्रव्य से उत्पन्न होते हैं, जो पाचन की खराबी से पैदा होता है। अतएव मानसिक रोगों का कारण भी पेड़ू से ही उत्पन्न होता है।

मनुष्य का जीवन जितना अधिक सादा और स्वाभाविक होगा उतना ही स्वस्थ और प्रसन्नचित्त वह होगा। इन्हीं जब

तक गुलाम रहे तब तक उनको अधिक परिश्रम करना होता था और मोटा अन्न खाने को मिलता था, तब तक वे स्वस्थ रहे किन्तु अब से वे स्वतन्त्र हो गये और नवीन सभ्यता में फँस गये तब से वे नाना प्रकार के रोगों में फँसे रहते हैं।

मानसिक रोग पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में कम होता है। इसका कारण यह है कि वे सिगरेट नहीं पीतीं, जितना पुरुष पीते हैं और वे शराब का भी पुरुषों की अपेक्षा व्यवहार कम करती हैं।

बहुत-सी दशाओं में देखा गया है कि रोग से पूर्व या रोग के साथ ही साथ शारीरिक और मानसिक उत्तेजना अधिक होती है। शरीर और मस्तिष्क में विजातीय-द्रव्य की अधिकता से मस्तिष्क पर दबाव पड़ता है और मस्तिष्क से स्नायु उत्तेजित होते हैं जिससे मनुष्य के मन में चंचलता बढ़ती है और कभी उसे छोड़कर दूसरा काम करने लगता है।

मानसिक रोगों का एक मुख्य कारण पीठ पर विजातीय द्रव्य का इकट्ठा होना है। जिससे पेड़ू की रगों पर, मोटी रग पर और सिमपेथाइक की रगों पर भारी-भारी हानि पहुँचती है। इस हानि से बचत उसी समय हो सकती है जब किसी कठिन बीमारी के कारण यह विजातीय-द्रव्य बाहर निकल जाय। तीक्ष्ण ज्वर से ऐसा दीर्घ स्थायी रोग उत्पन्न हो सकता है जो मस्तिष्क को बिगाड़ देता है। तीक्ष्ण रोगों से विजातीय-द्रव्य का जितना अधिक व कम उभाड़ होगा उतना ही मस्तिष्क अधिक व कम बिगड़ता रहेगा। इसके अलावा विजातीय-द्रव्य के दबाव की कमी के कारण बहुत से पागल अच्छे होते हुए देखे गये हैं और जब उसका दबाव फिर बढ़ गया है तो फिर पागल हो गए हैं।

विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल फेंकने से मानसिक रोग

अच्छे हो सकते हैं। इस तरीके से सैकड़ों रोगी चंगे हुए हैं। एक उदाहरण इस स्थान पर देना उचित मालूम होता है। २२ वर्ष की एक लड़की कई वर्षों से पागल हो गई थी। उसकी दशा ऐसी थी कि वह स्नान तक नहीं ले सकती थी। उसकी माँ उसे स्नान कराती थी। चार सप्ताह में उसकी दशा इतनी सुधर गई कि वह अपने हाथ से स्नान लेने लगी। वह साफ और सुथरी भी रहने लगी। ६ महीनों में वह एकदम चङ्गी हो गई।

कुछ ऐसी दशायें होती हैं जिनमें विजातीय-द्रव्य के निकलने का कोई सरल उपाय ही नहीं हो सकता, वहाँ रोगी का अच्छा होना कठिन हो जाता है। ऐसे रोगी देखने में आये हैं जो स्नान कराने में बल प्रयोग करते हैं और जबरदस्ती करने पर भी स्नान नहीं करते, आप ही बतलाइये, वे कैसे अच्छे हो सकते हैं। मानसिक रोग की समता क्षयी रोग से दी जा सकती है। क्षय रोग जब अन्तिम अवस्था में पहुँच जाता है तो नहीं अच्छा होता, उसी प्रकार मानसिक रोग भी जब चरम सीमा में पहुँच जाता है तो फिर नहीं अच्छा होता।

चेहरे को देखकर बतलाया जा सकता है कि अमुक मनुष्य को मानसिक रोग होने वाला है। उसी समय से यदि जल चिकित्सा प्रारम्भ कर दी जाय तो रोग निर्मूल हो सकता है। बहुत से मानसिक रोग असाध्य समझे जाते हैं किंतु वास्तव में यह बात ठीक नहीं है। यहाँ पर एक उदाहरण दिया जाता है।

एक रोगी को Progressive paralysis हो गया था। कई वर्षों से उसकी पाचन शक्ति नष्ट हो रही थी और वह अपने व्यवसाय की चिन्ता से इस कदर दुखी हुआ था कि उसका मस्तिष्क बिगड़ने लगा। बहुत-सी दवायें की गई किन्तु वह अच्छा नहीं हुआ। सन् १८६७ ई० में डाक्टरों की सलाह से वह उस स्थान का पानी पीने के लिये गया जहाँ मिनरल

पानी (Mineral water) का झरना बहता था। उस पानी का भी उस पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि उसकी दशा और भी अधिक खराब हो गई। उसकी जबान लटपटाने लगी और उसका दिमाग इतना बिगड़ा कि जो कुछ वह बकता था उसे कुछ मालूम ही न होता था। चार बड़े-बड़े चिकित्सक बुलाये और उन्होंने कहा कि पारे की मालिश करवाइए। मालिश करने से रोगी की हालत इतनी बिगड़ गई कि अब उससे कोई प्रश्न किया जाता तो वह उसी प्रश्न को दोहरा देता, उसका उत्तर नहीं दे सकता था। उसके अच्छे होने की सब आशा जब जाती रही तो लोग उसे वायना (Viena) ले गये। वहाँ डाक्टरों ने बतलाया कि इसे मस्तिष्क का क्षय रोग हो गया है, इसलिए इसे पागलखाने में रखना पड़ेगा। उसको आयोडाइन पीने को बतलाया गया। लोग अन्त में निराश होकर उसे कूने साहब के पास ले गये। दवा के शुरू में रोगी एक शब्द भी नहीं बोलता था। वह बेखबर था और प्रश्नों का उत्तर नहीं देता था। इसके अतिरिक्त वह शौच क्रिया स्वयं नहीं कर सकता था क्योंकि उसमें किसी कार्य के करने का उत्साह नहीं था। ठंडे स्नान और स्वाभाविक भोजन के कारण उसका रोग घटने लगा। एक सप्ताह में वह चङ्गा हो गया।

उपरोक्त दो उदाहरणों से सिद्ध है कि सब प्रकार के रोगों का कारण एक ही है। यदि मानसिक रोगों का कारण वही न होता तो और रोगों का है तो ये रोगी चङ्गे न हो सकते।

१२—कोढ़

कोढ़ की बीमारी अधिकतर गर्म देशों में होती है। जो मनुष्य इस रोग से ग्रसित हो जाता है उसके लिये सिवाय मृत्यु के कोई औषधि नहीं है। कहीं दूसरे लोग भी इस रोग में न पकड़ जायँ इस भय से कोढ़ी अपने घर से पृथक किये

जाकर एक दूर के स्थान में रक्खे जाते हैं। साधारणतया लोग उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते।

जिन देशों का जलवायु न बहुत ठंडा है और न बहुत गरम है वहाँ कोढ़ बहुत कम होता है किन्तु वहाँ गठिया और जलोदर रोग उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार खजूर का पेड़ केवल गरम देशों में पैदा होता है और शाहबलूत का वृक्ष साधारण गर्म और सर्द देशों में, उसी प्रकार कोढ़ गरम जलवायु में उत्पन्न होता है।

कोढ़ दो प्रकार का होता है, बहता हुआ और शुष्क। बहते हुए कोढ़ में शरीर धीरे धीरे सड़ता जाता है और कोढ़ी को अत्यन्त वेदना होती है। उसका रोग बढ़ता ही जाता है और अन्त में उसकी मृत्यु हो जाती है। शुष्क कोढ़ में पाचन शक्ति बहते हुये कोढ़ की तरह नष्ट होती रहती है। इसके अतिरिक्त काले-काले सड़े हुए धब्बे हाथ और पावों के सिरों में निकल आते हैं और भीषण ज्वर भी होता है। मांस धीरे धीरे गायब होने लगता है। पहले अँगुलियाँ गायब होती हैं और फिर शरीर के दूसरे भाग यहाँ तक कि केवल हड्डी शेष रह जाती है। अन्त में शरीर वृक्ष की ठूँठ की तरह रह जाता है।

कोढ़ का कारण वही है जो और बीमारियों का हुआ करता है अर्थात् विजातीय द्रव्य का शरीर में एकत्रित होना। यह विजातीय-द्रव्य या तो पैतृक होता है या अस्वाभाविक रहन सहन से उत्पन्न होता है। बीमारी पहले पहल पेड़ू या पाचन के अंगों में उत्पन्न होती है। गरम देशों की गरमी के कारण विजातीय द्रव्य बड़े ज़ोर से उफनाता है और वह शरीर के अंगों के सिरों की ओर जाकर उन्हीं में जम जाता है। इस प्रकार लगातार जमने से पट्ठों में जो इन सिरों को जीवन-शक्ति पहुँचाते हैं, रुकावट पड़ जाती है और वे अपना काम नहीं कर सकते इस प्रकार कोढ़ी के हाथ और पैर बिलकुल शून्य हो जाते हैं।

इन रोगियों को भीतरी तीव्र ज्वर होता है किन्तु बाहर से उनका शरीर ठंढा रहता है। शुष्क कोढ़ में प्रचंड भीतरी गरमी के कारण सिरे सूख जाते हैं। रोगी को चाहे जितना पोषक भोजन क्यों न दिया जाय किन्तु पाचन-शक्ति की कमजोरी के कारण यह हजम नहीं होता। यह भोजन बिना पचे हुए शरीर के बाहर निकल जाता है और रोगी का कोई पोषण नहीं होता। वास्तव में शरीर का पोषण उस भोजन से होता है जो रोगी को हजम होता है। अतएव पोषण के न मिलने से रोगी का शरीर गलना शुरू होता है।

गलित कोढ़ में सड़न जलोदर रोग की तरह होती है। यह उतना ही भयानक है जितना कि क्षय रोग। जिस प्रकार क्षय रोग में विजातीय द्रव्य फेफड़ों को सड़ा देता है उसी प्रकार विजातीय द्रव्य कोढ़ियों के अंगों को सड़ाता रहता है।

डाक्टरी इलाज से इस रोग को बहुत कम लाभ हुआ है या यों कहिये कि बिलकुल नहीं हुआ। शरीर का विजातीय द्रव्य जब निकाल दिया जाय और रोग का ज्वर भी निर्मूल कर दिया जाय तब कोढ़ी अलबत्ते अच्छा हो सकता है। यदि विजातीय-द्रव्य पूर्ण रूप से न निकला तो रोगी का एक दम चङ्गा होना कठिन है यद्यपि उसको कुछ लाभ अवश्य होगा।

जल-चिकित्सा से कोढ़ी के रोग बढ़न का कोई अंदेशा नहीं रह जाता और इसको छूत की बीमारी समझ कर उन लोगों को भी किसी प्रकार की हानि पहुँचने का डर नहीं रह जाता है जो उसके साथ रहते हैं। कोढ़ी को स्वाभाविक भोजन और ठंढे स्नान देते रहना चाहिये। जो लोग उसके पास रहते हैं उनको भी स्वाभाविक भोजन और ठंढे स्नान करना चाहिए यह एक बड़े शोक की बात है कि कोढ़ी बहुत तंग स्थानों में बाय रक्खे जाते हैं। जहाँ सांस लेन के लिये उनको काफी हवा भी नहीं मिलती।

तीन लड़के एक बार कूने साहब के पास गये जिनको कोढ़ का रोग हो गया था। उनकी हालत बड़ी शोचनीय थी। उनकी अवस्था क्रमश: ६, १३, और १४ वर्ष की थी। उनके हाथ के सिरे, अँगुलियों के पोर सड़ चुके थे और अँगुलियों के शेष हिस्से फूले हुए थे। दो भाइयों के पैर भी खराब हो गये थे। उनमें घाव हो गये थे और मवाद निकल रही थी। हाथों के छूने की शक्ति बिलकुल जा चुकी थी। डाक्टरों न उनके हाथों में सुइयाँ चुभोया था और उनका असर उन बच्चों पर कुछ भी नहीं होता था।

कूने साहब ने उनकी चिकित्सा करना शुरू किया। दो और कभी तीन सिट्ज़बाथ दिये जाने लगे। कभी-कभी उनको हिप बाथ भी दिया जाता था। भोजन उनको स्वाभाविक मिलने लगा और वे खुली हवा में रक्खे जाने लगे। पहले तो घावों की बदबू विजातीय-द्रव्य के उभाड़ से और भी बढ़ गई किन्तु फिर घटने लगी।

प्रातःकाल खाने के लिये सूखी गेहूँ की रोटी और सेब दिये जाते थे, रात को तरकारियाँ, कच्चा उबाली हुई और आटे की रोटी दी जाती थी। थोड़ा नमक और घी भी दिया जाता था। माँस और शोरबा एक दम बन्द कर दिया गया था। पीने के लिये केवल ताजा पानी दिया जाता था। पन्द्रह रोज में पैरों के घाव की मवाद बन्द हो गई और वे भीतर से भरने लगे। दूसरे दो बच्चों के घावों की दशा एक महीने में सुधरी। हाथों की हालत भी अच्छी होने लगी। विजातीय-द्रव्य पेड़ू की तरफ आने लगा जिससे रोगियों को हाथ, पैर और जोड़ों में दर्द मालूम हुआ।

चिकित्सा से पहले सब से बड़ा लड़का जूते भी नहीं पहन सकता था किन्तु चार सप्ताह के बाद वह मामूली चमड़े का

जूता पहनने लगा, अंगों के सिरों में चैतन्यता आने लगी और पाचन शक्ति अपना काम पूर्ण रूप से करने लगी। शुरू शुरू में लड़कों को भूख नहीं लगती थी किन्तु अब वे भूख के मारे चिल्लाते थे। बच्चे धीरे धीरे अच्छे हो गये।

कूने साहब के मत से यह बात उपरोक्त रोगियों द्वारा भली भाँति सिद्ध कर दी गई कि कोढ़ का वही कारण है जो अन्य रोगों का हुआ करता है।

१३—गरमी सुजाक, नपुंसकता

बीमारियों के सम्बन्ध में कोई चीज गुप्त रखना हानिकारक है। बहुत सी ऐसी बीमारियाँ हैं जिनके कहने में हमारे नवयुवकों को बड़ी लज्जा मालूम होती है किन्तु उनके लिये ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। हमें बहादुरी के साथ अपनी गुप्त बीमारियों को बतलाना चाहिए और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस समय जननेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारियाँ जैसे गरमी और सुजाक स्त्री और पुरुषों में अधिक फैल रही हैं। हजारों नर नारी प्रति वर्ष इन बीमारियों के भेंट होते हैं। अतएव यह आवश्यक है कि उनकी औषधियाँ विस्तार-पूर्वक बतलाई जायँ।

आज-कल गर्मी (Siphois) को दूर करने के लिये अनेक दवाएँ की जाती हैं किन्तु उनसे रोग निर्मूल नहीं होता। जल चिकित्सा ही एक अमोघ औषधि है। गर्मी के बीमारों को कुछ अच्छा करके डाक्टर लोग प्राय विवाह करने की सलाह दिया करते हैं। इससे बढ़कर और गलती क्या हो सकती है। इससे स्त्री का भी स्वास्थ्य खराब हो जाता है। ऐसे स्त्री-पुरुषों की सन्तति भी निकम्मी होती है। गर्मी दो प्रकार की होती है, एक गुप्त और दूसरी स्पष्ट। स्पष्ट गर्मी गुप्त गरमी से अच्छी है क्योंकि स्पष्ट गरमी में तो उसके चिह्न दिखलाई पड़ते हैं किंतु गुप्त गरमी के

चिह्न इतने गुप्त होते हैं कि इस बीमारी का पता तक नहीं चलता।

मुखाकृति विज्ञान से गुप्त गरमी का पता फौरन चल जाता है और उसका सफलता-पूर्वक इलाज भी होता है। गरमी की तरह और भी बीमारियाँ होती हैं, जिन्हें प्रमेह सुजाक स्वप्नदोष आदि के नाम से पुकारते हैं।

जननेंद्रियों को और मूत्रेन्द्रियों को ईश्वर ने मल को बाहर निकाल कर फेंक देने के लिए बनाया है और इसलिए विजातीय द्रव्य इन स्थानों पर बहुतायत से इकट्ठा होता है। यह बात स्त्रियों में अधिक देखने में आती है। त्वचा में सोखने की शक्ति होनेके कारण विजातीय द्रव्य एक शरीर से दूसरे शरीर में बड़ी आसानी से पहुँच जाता है। पुरुष का विजातीय द्रव्य स्त्री में आ सकता है और स्त्री का पुरुष में। यदि मनुष्य में स्त्री की अपेक्षा अधिक विजातीय द्रव्य है तो वीर्य जो उसके शरीर के रस से बनता है स्त्री के शरीर में मिलकर उसे अधिक रोगिणी बना सकता है।

भोग इच्छा का विवरण ठीक-ठीक और सन्तोष-पूर्वक अभी तक नहीं लिखा गया। यह इच्छा कब ठीक होती है और कब बेठीक इस विषय पर अभी स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं लिखा गया है। तथापि पुस्तकों से यह बात मालूम हो सकती है कि आत्म रक्षा के विचार से उतर कर सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा मनुष्य में सबसे प्रबल होती है। दूसरी इच्छाओं की तरह कामेच्छा की भी शुद्ध दशा होती है और जब शरीर विजातीय-द्रव्य से भर जाता है तो उसकी दशा अशुद्ध हो जाती है। कामेच्छा एक थर्मामेटर है जिससे स्वास्थ्य की दशा निरन्तर मालूम होती रहती है। जब विजातीय-द्रव्य की मात्रा बढ़ जाती है तो उसके दबाव से रगों में अधिक जोश पैदा होता है जिससे काम चेष्टा अधिक बढ़ती है किन्तु साथ ही वीर्य भी धीरे धीरे घटता जाता है। काम चेष्टा की शुद्ध दशा मनुष्य को

बुरे विचारों से बचाये रहती है। स्वस्थ मनुष्यों की कामेच्छा ठीक रहती है। वे स्वाभाविक भोजन और रहन-सहन से शरीर अपने वश में, बिना किसी कष्ट के रखते हैं।

कामेच्छा की बीमारी उन लोगों को वास्तव में होती है जिनके शरीर में विजातीय-द्रव्य भरा हुआ है। वे ही जननेन्द्रियों की नाना प्रकार के बीमारियों में फँसे रहते हैं। गरमी-सुजाक और प्रमेह का असर उन लोगों पर नहीं होता जिन लोगों के शरीर विजातीय-द्रव्य से मुक्त हैं। किंतु जिनके शरीर विजातीय-द्रव्य से भरे हुए हैं वे इन बीमारियों के बहुत जल्द शिकार बनते हैं।

एक शरीर का संचित हुआ विजातीय-द्रव्य भोग के समय दूसरे शरीर में जाता है और इस व्यक्ति के विजातीय-द्रव्य से मिलकर खमीर उत्पन्न करता है। इस क्रिया से खमीर में अधिक शक्ति बढ़ जाता है। यह विजातीय-द्रव्य को गरमी, सुजाक आदि रूप में बाहर निकालने का कोशिश करता है। अतएव इन बीमारियों का कारण विजातीय-द्रव्य यदि ठीक रीति से शरीर के बाहर निकाल दिया जाय तो आदमी चंगा हो सकता है। डाक्टर लोग इनका चिकित्सा में बड़ी गलती करते हैं। वे पिचकारी द्वारा आयोडीन, आयोडाइट इत्यादि औषधियों को शरीर के भीतर पहुँचाकर रोग को निर्मूल करना चाहते हैं। इससे शरीर का शक्ति नष्ट होती है और बीमारियाँ दब जाती हैं। किन्तु समय को पाकर वे फिर उभड़ती हैं।

अतएव दवाओं से जननेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारियाँ अच्छी नहीं होती। विरुद्ध इसके उनकी दशायें और खराब हो जाती हैं। स्नानों से यह बीमारियाँ जड़ से दूर हो जाती हैं। शुरू में उभाड़ जरूर होता है किन्तु उससे डरना नहीं चाहिये। यह उभाड़ उस विजातीय-द्रव्य का है जो शरीर के भीतर दवाओं के खाने और मिथ्या आहार-विहार से भर गया है।

जल-चिकित्सा से भयानक से भयानक गरमी अच्छी होती है। इससे गरमी की जड़ भी चली जाती है जिससे भविष्य की सन्तान इस बीमारी से सुरक्षित हो जाती है। गरमी के वे ही रोगी अच्छे हो सकते हैं जिनकी पाचन शक्ति बिलकुल नहीं बिगड़ जाती। जो रोगी कुछ भी नहीं पचा सकते उनका अच्छा होना असम्भव है।

गर्मी-सुजाक आदि बीमारियाँ जब प्रकट होती हैं तो उनसे साफ मालूम होता है कि शरीर में विजातीय द्रव्य भरा हुआ है। अगर ये बीमारियाँ अच्छी न की गई तो उनसे गठिया और क्षय रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। बहुत से बच्चों के पैदाइशी क्षय रोग होता है। साधारण जनता उसके कारण को नहीं समझती। वास्तव में माता-पिताओं के कर्मों का बच्चों को भोगना पड़ता है।

सुजाक और गर्मी में बड़ी जलन पैदा होती है और सूजन भी आ जाती है। प्रकृति इन बीमारियों के द्वारा दोष-युक्त विजातीय-द्रव्य यानी मवाद को शरीर के बाहर निकालने की कोशिश करती है। जितना ही अधिक विजातीय-द्रव्य बाहर निकलेगा उतना ही अधिक शरीर शुद्ध होगा। जल-चिकित्सा बाहर निकलनेवाली क्रिया को कम कष्टदायक और हानिकारक बना देती है। किन्तु विजातीय-द्रव्य को बाहर निकालने वाली शारीरिक क्रिया में कोई बाधा नहीं डालती। यह नहीं कहा जा सकता कि गरमी आदि के रोगी कितने समय में अच्छे हो सकेंगे। उनका जल्दी और देर में अच्छा होना विजातीय-द्रव्य की न्यूनता व अधिकता पर निर्भर है। डाक्टर लोग पिचकारी द्वारा शीशा, पारा, जस्ता और काइक्षार्म मूत्राशयों और स्त्रियों के योनियों में इस वास्ते चढ़ाते हैं कि ये बहते हुए विजातीय-द्रव्य को रोक देवें। यह कितनी

भयानक बात है। जो मवाद रोक दी जाती है आखिर शरीर के भीतर उसका क्या परिणाम होता है। इस पर कोई कुछ नहीं विचार करता। प्रकृति के सब काम किसी विशेष कारण के साथ होते हैं। उसकी सहायता प्राकृतिक-साधनों से ही की जा सकती है अन्य साधनों से नहीं। डाक्टरों के गलतियों से ही वास्तव में देश में इतने पागलखाने और सफाखानों की वृद्धि हो रही है। यदि उनकी दवाओं से लाभ पहुँचता तो अस्पतालों की संख्या इतनी न बढ़ती।

नपुंसकता।

आजकल नपुंसक लोगों की संख्या बहुत काफी बढ़ी हुई है। मेडिकल साइंस ने अभी तक कोई अच्छी औषधि नहीं निकाली है। कोई अच्छी औषधि उस समय तक निकल भी नहीं सकती जब तक यह न मान लिया जाय कि शरीर के अन्दर विजातीय-द्रव्य की उपस्थिति से ही प्रत्येक प्रकार की बीमारियाँ पैदा होती हैं। शरीर से यदि विजातीय-द्रव्य निकाल दिया जाय तो मनुष्य की नपुंसकता अच्छी हो सकती है। यदि लगकर जल-चिकित्सा की जाय तो जननेन्द्रियों के काम करने की शक्ति फिर से प्राप्त हो सकती है। स्त्रियों की नपुंसकता को बाँझपन कहते हैं। यह बाँझपन जननेन्द्रियों की बुरी बनावट से नहीं पैदा है, किन्तु इसका भी कारण विजातीय-द्रव्य ही है। साथ ही साथ पुरुषों की काम चेष्टा स्त्रियों की काम चेष्टा से भिन्न है और इस वास्ते पुरुषों में नपुंसकता दूसरे ही रूप में दिखलाई देती है। नपुंसकता होने के पहले इसके लक्षण बतलाये जा सकते हैं। इस रोग से होने के पहले सम्भोग की बड़ी इच्छा होती है और इंद्रियों में खुजली पैदा होती है। यह हस्तक्रिया ही से उत्पन्न होता है। जब काम वासना चर्म-सीमा तक पहुँच जाती है तब मनुष्यों में नपुंस

कता शुरू हो जाती है। धीरे धीरे फिर उसके इन्द्रियों की सजी वता जाती रहती है। और पुरुष अपनी स्त्रियों के चैन्न से भी लज्जा मालूम करते हैं। न मालूम कितने आत्म-हत्या कर लेते हैं।

२३ वर्ष का एक नवयुवक था। १२ वर्ष की अवस्था में हस्त मैथुन करने की उसकी आदत पड़ गई थी। उसकी स्मरण शक्ति नष्ट हो चुकी थी। वह इस बुरी आदत को छोड़ने का प्रयत्न करता था किन्तु ऐसा नहीं कर सका। उसने बहुत सी औषधियाँ कीं किन्तु कोई भी लाभ नहीं हुआ। वह अपने से घृणा करने लगा और आत्म-हत्या करने का विचार किया। अन्त में निराश होकर वह कूने साहब के पास गया और उनसे जल-चिकित्सा करने की प्रार्थना की। कूने साहब ने उसे धीरज दिया और वह उनके आदेश से जल-चिकित्सा करने लगा। १२ महीने में स्नान और प्राकृतिक भोजन से उसकी नामरदी जाती रही और वह एक बार फिर जवान हुआ।

१४—दाँत के रोग, जुकाम, घेंघा,

दाँतों के रोग—

दाँत यदि खोखले हो गये हों और उनमें पीड़ा होती हो तो यह समझना चाहिये कि रोगी के शरीर में विजातीय-द्रव्य काफी तादाद में भरा है। जो विजातीय-द्रव्य सर की ओर जाता है उसी से यह पीड़ा पैदा होती है। दाँत धीरे धीरे एक-एक करके गिर जाते हैं। दाँतों के गिरने से भी कभी-कभी दर्द होता है। वह दर्द विजातीय-द्रव्य के उफान के समय गरमी से पैदा होता है।

जल-चिकित्सा से कभी-कभी दाँतों की पीड़ा थोड़े समय के लिए बढ़ जाती है। कारण इसका यह है कि चिकित्सा से पुराने रोग का उभाड़ होता है। यही हालत गठिया रोग में भी होती है। दाँतों को निकलवा देना बड़ी भारी मूर्खता है। ऐसा करना दाँत की पीड़ा को दूर करना नहीं बल्कि शरीर के एक भाग

श्यक अंग को काटकर फेंक देना है। ठंडे स्नान और स्वाभाविक भोजन इसकी चिकित्सा है। कभी-कभी सर का स्टीम बाथ और उसके पश्चात् हिपबाथ लेना चाहिए। शरीर को गरम करने के लिये खूब टहलना चाहिए। किसी-किसी हालत में तो एक स्थानिक स्टीमबाथ और हिपबाथ से दर्द दूर हो जाता है। यदि अच्छा न हो तो स्नान बराबर लेना चाहिए।

अतएव दाँत और उनके सब रोग उसी समय अच्छे हो सकते हैं जब विजातीय-द्रव्य शरीर से निकल जाय और फिर न पैदा हो। जब दाँत खोखले होकर गिर गये तो उनको फिर प्राप्त करना असम्भव है। जो दाँत नहीं गिरे उनकी रक्षा करना चाहिए ताकि जितने समय तक वे चल सकें वे अपना काम करते रहें। जो दाँत हिल रहे हों उनको निकलवा कर उनके स्थान में बनावटी दाँत लगाये जा सकते हैं। दाँत ही एक ऐसी हड्डियाँ हैं जो शरीर से एकदम निकलती हैं और उनमें किसी प्रकार की त्वचा ढकने के लिये नहीं रहती। विजातीय-द्रव्य के सड़न का प्रभाव इन हड्डियों पर विशेष रूप से पड़ता है। यदि उनमें त्वचा होती तो पहले त्वचा पर पड़ता और पीछे दाँतों पर।

जुकाम—

हवा की नलियों में सामान्य जलन से उत्पन्न होता है। लोगों का कहना है कि यह सरदी में हो जाता है। जो लोग विजातीय-द्रव्य से भरे हैं, सरदी उन्हीं को लग कर सकती है किन्तु जो स्वस्थ हैं अर्थात् जिनका शरीर विजातीय द्रव्य से खाली है उन्हें सरदी कभी नहीं लग सकती। जुकाम एक प्रकार से फेफड़ों के विकार को निकालते हैं इसलिये उसे रोकने की चेष्टा न करना चाहिए। इसमें ठंडे स्नान करना चाहिये और खुली हवा में रहना चाहिए।

इनफ्ल्यूएनज़ा—(Influenza)

इस रोग में सिट्ज़ और हिपबाथ और कभी-कभी स्टीम बाथ लेना चाहिए। साथ ही स्वाभाविक भोजन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस रोग में हाज़मा कमज़ोर हो जाता है। पेट में विजातीय-द्रव्य अधिक जमा रहता है। इसलिए कभी-कभी ज्वर आ जाता है।

गले की बीमारियाँ—

गले की बीमारियाँ आजकल क्रमश: बढ़ रही हैं। जब फेफड़ों में विजातीय-द्रव्य संचित हो जाता है तो ये बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, ये माता पिता से प्राप्त दोषों से भी उत्पन्न हुआ करती हैं। इन बीमारियों से विजातीय-द्रव्य जोश खाता हुआ नीचे से उठता है। धड़ और सर के बीच का हिस्सा यानी गरदन तंग होती है इसलिये यह रुकावट उपस्थित करती है। इसलिए गरदन को उसका परिणाम पहिले भोगना पड़ता है।

गले की बीमारियों को जल्द या देर में अच्छा होना विजातीय-द्रव्य की कमी या अधिकता पर निर्भर है। यदि विजातीय-द्रव्य पैतृक हुआ तो कई वर्ष भी लग सकते हैं किन्तु सफलता अवश्य मिलती है।

घेंघा—

घेंघे का रोग पहाड़ी स्थानों में और मुख्य मुख्य स्थानों में विशेष रूप से होता है। यह रोग उन भारी-भारी बोझों के कारण होता है जिसे पहाड़ी अपनी पीठ पर लादकर ले आते हैं। भारी बोझ उठाने से घेंघे का रोग उत्पन्न हो सकता है किन्तु इसके अन्य कारण भी हैं और वे अत्यन्त आवश्यक हैं। पहाड़ का साफ पानी प्राय: बुरा प्रभाव उत्पन्न करता है। मिट्टी और चट्टानों पर लगातार बहने के कारण यह प्राय: धातुओं को

(सीसा वाबा) होता पकता है, और मनुष्य के शरीर में विकार उत्पन्न करता है। यदि आप थोड़ा पहाड़ी पानी लीजिए और उसे एक बरतन में रख दीजिए तो आप तह में कोई वस्तु बैठी हुई देखेंगे। यह वस्तु पेट के भीतर जाकर विशेष अंग में पैठ जाती है और घेंघा उत्पन्न करती है।

उन लोगों को घेंघा नहीं होता जो स्वाभाविक भोजन करते हैं और जिनका रहन सहन स्वाभाविक होता है। किन्तु जिनको भोजन स्वाभाविक नहीं है। या जिनका रहन-सहन स्वाभाविक नहीं है उनका विजातीय-द्रव्य ऊपर को जोश खाकर उठता है और गले में इकट्ठा होता है जिसको घेंघा कहते हैं। घेंघा जब बाहर की ओर होता है तो दर्द नहीं होता, हाँ बोझ अवश्य मालूम होता है और बेचैनी मालूम होती। यह घेंघा असर नाक भी नहीं होता, किन्तु जब सूजन से फेफड़ों पर असर पड़ता है तो बीमारी भयानक हो जाती है।

यह ख्याल करना भूल है कि ताजा, बर्फीला पानी आरोग्य दायक है। जल में मिश्रित पदर्थों का रहना पानी के भारी होने का काफी प्रमाण है। सूर्य्य की रोशनी में बहता पानी और मेंह का पानी स्वास्थ्य के लिए सब से अच्छे जल हैं। भारी और ताजे पानी में कोमल वृक्ष या फूल नहीं पनपते। इस पानी का दोष सूर्य्य की गरमी से ही दूर हो सकता है।

इस बीमारी में सिट्ज बाथ बहुत फायदा करते हैं।

१५—आँख और कान की बीमारियाँ

ये दोनों अङ्ग बड़े आवश्यक हैं। प्रायः लोग कहते हैं कि ये बीमारियाँ केवल बाह्य कारणों से उत्पन्न होती हैं। उनको इस बात पर विश्वास नहीं होता कि इन बीमारियों का कारण वास्तव में बड़ा गहरा है। जल चिकित्सा की दृष्टि से ये सब बीमारियाँ भीतर की पुरानी खराबियों से पैदा होती हैं। सिफ-

अल्पायु में ही जर्जर होने लगते हैं। मेरी समझ में जितना स्वास्थ्य हिन्दुस्तान की स्त्रियों का गिरा हुआ है उतना गिरा हुआ स्वास्थ्य कदाचित किसी देश की स्त्रियों का नहीं है।

हिन्दुस्तान के शहरों में रहने वाली स्त्रियों की दशा सो शोचनीय है। ये प्रायः क्षयरोग और प्रसूत की बीमारी से पीड़ित रहती हैं। इसके विरुद्ध गाँव की रहने वाली स्त्रियाँ तब भी बहुत काफी तन्दुरुस्त हैं।

स्त्रियाँ स्वभाव से ही बड़ी लजीली होती हैं, इसलिए वे अपना रोग किसी से कहती नहीं। स्त्रियों को चाहिये कि वे अपने रोग को न छिपावें और जिस समय कोई रोग उत्पन्न हो उसी समय उसकी चिकित्सा करें।

पाश्चात्य देशों में स्त्रियों ने जल चिकित्सा को अपनाया है और उससे काफी लाभ उठा रही हैं। अभी हिन्दुस्तान में स्त्रियों का ध्यान जल चिकित्सा की ओर नहीं गया। हमें पूर्ण आशा है कि हमारी बहनें और हमारी मातायें एक बार जल चिकित्सा का अनुभव करेंगी और फिर जीवन में उससे लाभ उठाती रहेंगी।

मासिक धर्म का ठीक-ठीक न होना —

जिन स्त्रियों को मासिक धर्म ठीक रूप में होता है उनमें बच्चा पैदा करने की शक्ति वर्तमान है। जब तक उनको गर्भ नहीं रहता तब तक रुधिर का प्रवाह जारी रहता है। इस रुधिर के प्रवाह में न तो कोई पीड़ा होती है और न कोई बेचैनी मालूम होती है। यदि कोई पीड़ा या बेचैनी हो तो समझना चाहिए कि स्त्री के शरीर में विजातीय-द्रव्य मौजूद है।

स्वस्थ स्त्री के मासिक धर्म का सम्बन्ध चन्द्रमा से होता है। उसका मासिक धर्म ठीक पूर्णिमा में होना चाहिए और तीन या चार दिन तक जारी रहना चाहिए। यदि स्त्रियों को पूर्णिमा के एक दो दिन पहले या पीछे मासिक धर्म न हो तो यह समझ

लेना चाहिये कि उनके पेडू में विजातीय-द्रव्य का बोझ स्थित है। मासिक धर्म पूर्णिमा से जितना आगे चलकर होगा उतना ही स्त्री के पेट में विकार होगा। यदि स्त्री को दो सप्ताह में या तीन सप्ताह में मासिक धर्म होवे तो समझना चाहिये कि उस स्त्री के पेट में विजातीय-द्रव्य बहुत ही अधिक है।

मासिक धर्म के समय स्त्री और नौजवान लड़की की अधिक देख-रेख करनी चाहिये। इस समय में स्त्री को क्रोध न करना चाहिये और हर प्रकार की उत्तेजना देनेवाली बातों से बचना चाहिये। यही हाल गर्भवती स्त्रियों का भी होता है। उन्हें भी शान्ति होनी चाहिये और हर एक उत्तेजिक बात से बचना चाहिये क्योंकि इन बातों का असर पेट के बच्चे पर पड़ता है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि विजातीय-द्रव्य से ही मासिक धर्म में व्यतिक्रम पैदा होता है। यदि हम ठंडे स्नान द्वारा और स्वाभाविक भोजन द्वारा उनकी पाचन-शक्ति को बढ़ा दें और उनके पेडू को ठंडा रक्खें जिससे उनकी पाखाना साफ हो सके तो मासिक धर्म ठीक हो सकता है। मासिक धर्म के समय में जो रुधिर निकलता है वह स्त्री के शरीर की सफाई करता है किन्तु गर्भवती हो जाने पर वही रुधिर गर्भ के बच्चे का पोषण करता है। सबसे नाजुक दिन गर्भवती स्त्री के लिये पूर्णिमा के समीपवाले दिन होते हैं, जिस समय प्राय स्वस्थ स्त्रियों को मासिक धर्म होता है।

एक गर्भवती स्त्री थी जो चूहों से अधिक डरती थी। एक दिन एक चूहा उसकी नंगी बाँह पर से होकर दौड़ा। इससे स्त्री इतनी भयभीत हुई कि उसी का उसे रात में स्वप्न भी दिखलाई पड़ता था। छः महीने के बाद जब बच्चा पैदा हुआ तो उस बच्चे की भुजा पर एक स्थान चूहे के आकृति का भी था और उसमें चूहे की तरह बाल भी लगे हुए थे।

एक स्त्री को ऐसा बच्चा पैदा हुआ जिसका मुँह एक कान से दूसरे कान तक फटा हुआ था। वह पैदा होते ही मर गया। उस स्त्री ने बहुरूपिये को एक समय देखा था जिसका मुँह एक कान से दूसरे कान तक फटा हुआ था। यह विचार गर्भ के समय में उसके मस्तिष्क में नाचता रहा और इस वास्ते उसी प्रकार का उसे बच्चा भी पैदा हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विचारों का असर गर्भ पर अत्यन्त अधिक पड़ता है। यदि गर्भ के समय पर स्त्री दुखी रहती है तो बच्चा दुखी स्वभाव का पैदा होगा और यदि वह स्त्री प्रसन्न चित्त है तो लड़के का स्वभाव भी प्रसन्न चित्त होगा।

गर्भपात—

गर्भाशय में विजातीय-द्रव्य इकट्ठा हो जाने से गर्भपात होता है। विजातीय-द्रव्य से गर्भाशय में गरमी और दबाव पैदा होती है। इस गरमी और दबाव को गर्भाशय रोक नहीं सकता और इसलिये वह गरमी को निकाल बाहर करता है। जल चिकित्सा से भीतरी दबाव और भीतरी गरमी कम होती है और विजातीय-द्रव्य निकल जाता है। अतएव फिर गर्भपात होने की शङ्का शेष नहीं रह जाती।

बाँझपन—

बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी हैं जो देखने में बड़ी मोटी ताजी होती हैं किन्तु उनके बच्चा नहीं होता। वे बच्चा न होने पर आश्चर्य प्रकट करती हैं। यह उनकी भारी भूल है। इनको नहीं मालूम कि उनकी बच्चेदानी विजातीय द्रव्य से भर गई है।

कुछ स्त्रियाँ ऐसी होती हैं जो डाक्टरों को बुलाकर पिचकारी लगवाती हैं या नाना प्रकार की दवायें खाती हैं। हिन्दुस्तान में कुछ स्त्रियाँ बच्चों के लिये देवी और देवताओं की पूजा करती फिरती हैं किन्तु इनसे उनको किसी प्रकार की सहायता नहीं

मिल सकती। मुझे शोक है कि स्त्रियाँ असली तत्व की ओर न जाकर इतना दुःख उठाती हैं।

एक स्त्री को विवाहित हुए ८ वर्ष हो चुके थे। उसको कोई बच्चा नहीं हुआ था। उसने बहुत-सी औषधियों का सेवन किया किन्तु कोई लाभ न हुआ। वह कूने साहब के पास गई और उसने अपनी दशा बतलाई। कून साहब ने उससे कहा कि यदि तुम दो या तीन हिप और सिट्ज़ बाथ लो, स्वाभाविक भोजन करो और अपना रहन-सहन ठीक रक्खो तो तुम्हारे बच्चा हो सकता है। उस स्त्री ने कूने साहब के आदेश का पालन किया। परिणाम यह हुआ कि कुछ महीनों में वह गर्भवती हुई और आगे चलकर उसके एक तन्दुरुस्त बालक पैदा हुआ।

स्तनों का ज़ख्मी होना और दूध का न उतरना—

स्त्रियों के स्तनों में दूध का पैदा होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि माँ का दूध बच्चे का स्वाभाविक भोजन है किन्तु शोक है कि स्त्रियों की एक अधिक संख्या ऐसी है जो काफी तौर पर अपने बच्चों को दूध नहीं पिला सकती। वास्तव में ऐसी माताओं को बच्चा पैदा करने का कोई अधिकार नहीं है। क्या कभी पशुओं में हम ऐसी बात पाते हैं कि वे अपने बच्चों को दूध नहीं पिलाते हों? ऐसा कभी देखने में नहीं आता तो मानवीय स्त्रियों में ही यह बात क्यों पाई जाती है? कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए। एक कारण यह होता है कि गर्भवती होने और दूध पिलाने के पहिले स्त्रियों के स्तन बड़े-बड़े हो जाते हैं। जिन स्त्रियों के स्तन बड़े होते हैं वे या तो बच्चे को काफी दूध नहीं पिला सकतीं या उनके स्तनों के सिरों पर घाव हो जाते हैं। स्तनों का बड़ा होना इस बात को प्रकट करता है की स्त्री का शरीर विजातीय-द्रव्य से भरा हुआ है।

दूसरी ओर हम ऐसी स्त्रियों को भी देखते हैं जो बिना तकलीफ के बच्चा पैदा करती हैं और बिना किसी तकलीफ के बच्चे को दूध पिलाती हैं। उनके स्तन बड़े नहीं होते। इसका कारण यह है कि उनका शरीर विजातीय द्रव्य से खाली रहता है। ठंडे स्नान, स्वाभाविक भोजन, स्टीम बाथ और स्वाभाविक रहन-सहन से स्तनों के जख्म मिट सकते हैं और स्त्रियों के स्तनों में काफी दूध भी पैदा हो सकता है।

एक स्त्री के स्तनों में सूजन पैदा हुई। उसके घराने के डाक्टर ने नश्तर देने की सलाह दी किन्तु उसने नश्तर लेने से अस्वीकार कर दिया। अन्त में वह कूने साहब के पास गई और जल चिकित्सा करने की प्रार्थना की। कूने साहब ने रात में आध घन्टे के चार सिट्ज बाथ लेने को कहा। दूसरे दिन उसको आराम मिला। कुछ और दिनों के पश्चात् उसका सारा दर्द दूर गया और वह पूर्ण स्वस्थ हो गई।

प्रसूत का ज्वर—

हर साल हजारों स्त्रियाँ इस ज्वर की शिकार होती हैं। इस रोग के प्रकट होने से यह जाहिर होता है कि स्त्री का शरीर विजातीय-द्रव्य से भरा हुआ है। जब शरीर में विजातीय-द्रव्य उफान खाने लगता है तो ज्वर उत्पन्न होता है। अतएव उन्हीं स्त्रियों को प्रसूत का ज्वर होता है जिनके पेट में बच्चा पैदा होने के बाद विजातीय-द्रव्य काफी तादाद में शेष रह जाता है। अतएव यदि हम चाहते हैं कि स्त्रियों को प्रसूत ज्वर न हो तो सिट्ज बाथ से उनके आन्तरिक विजातीय-द्रव्य को निकाल बाहर करना चाहिए।

सुखपूर्वक बच्चा पैदा करने के अनन्तर एक स्त्री को कठिन प्रसूत ज्वर हुआ। दाई ने गरम पट्टियों का प्रयोग किया। किंतु उनसे कोई लाभ न हुआ। उसको इस बात का ज्ञान ही न था

किसी के शरीर के भीतर विजातीय-द्रव्य के जमाव से गरमी उत्पन्न हुई है और वह गरमी केवल ठंडक पहुँचाने से ही शांति हो सकती है। वह स्त्री कूने साहब के पास गई और जल-चिकित्सा करने की प्रार्थना की। कूने साहब ने उसे ३ सिट्ज बाथ ४ से ३० मिनट तक के लेने का आदेश किया। १८ घंटे में बुखार कम हो गया और एक सप्ताह में वह बिलकुल चंगी हो गई। इन स्नानों से उसका स्वास्थ्य भी पहले से अच्छा हो गया।

इसी प्रकार एक दूसरी स्त्री को भी बच्चा जनने के पश्चात् प्रसूत ज्वर हुआ। बड़े बड़े डाक्टरों ने उनकी औषधि की किंतु कोई लाभ न हुआ। डाक्टरों के एक सप्ताह के इलाज से उस स्त्री को सन्निपात हो गया। इसके पश्चात् लोगों ने तार देकर कूने साहब को बुलवाया। कूने साहब ने एक-एक घंटे के सिट्ज बाथ दिये जिससे स्त्री का सन्निपात चला गया और वह बात चीत करने लगी। उसने कुछ दिन तक जल चिकित्सा जारी रक्खी और उसके बाद वह बिलकुल चंगी हो गई।

बिना दर्द के गर्भवती स्त्री का बच्चा पैदा करना—

यदि हम जंगल में घूमनेवाले पशुओं की तरफ ध्यान दें जिनके शरीर आधुनिक सभ्यता से विकृत नहीं हो गये हैं तो हम देखेंगे कि ये पशु जब बच्चा पैदा करते हैं तो उनको किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती और न ये पशु हमारे घर की स्त्रियों की तरह एक स्थान में करीब एक महीने पड़े रहते हैं। उनको बच्चा पैदा होने को होता है तो वे पहले से किसी बात की चिन्ता भी नहीं करते।

प्राय ऐसा देखा गया है कि बच्चा पैदा करते ही वे अपने रोज का काम करने लग जाते हैं। एक हरिणी थी, वह जब दो बच्चों को पैदा कर रही थी कि इतने में एक शिकारी आ धमका। वह भाग गई किन्तु गोली से मारी गई। जाँचने पर

मालूम हुआ कि उसके पेट में एक बच्चा और था। पेट काट कर बच्चा निकाला गया और वह जीवित निकला।

किंतु स्त्रियों को बिना कष्ट के बच्चा नहीं होता। ऐसी कोई स्त्री देखने में नहीं आती जिसकी सहायता के लिये एक दाई के बुलाने की आवश्यकता न पड़े। वास्तव में बच्चा प्राकृतिक ढंग की जगह अप्राकृतिक ढंग से पैदा होता है और अपनी जान बचाने के लिये स्त्री को बिस्तरे पर बहुत समय तक पड़ा रहना पड़ता है।

प्रकृति के विरुद्ध काम करने से इन दशाओं का गहरा कारण अवश्य होगा। यह दशायें वास्तव में प्राकृतिक नियमों के तोड़ने से उत्पन्न होता है। मनुष्य शरीर के अप्राकृतिक क्रम में हाथ डालकर प्रकृति के नियमों का उल्लङ्घन करता है और इसी वास्ते उसे नाना प्रकार की आपत्तियों का सामना करना पड़ता है।

तो फिर यदि मनुष्य प्राणी बरबादी के समीप आ जाय तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है। जब मनुष्य प्रकृति के रास्ते से अलग होने लगा तो उसका शरीर विजातीय-द्रव्य से भर गया और फिर उसके कारण उसमें नाना प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हुईं। हम लोगों ने वैकुण्ठ को अपने हाथ से गँवा दिया। हमारा बना-बनाया स्वास्थ्य प्रकृति के नियमों के उल्लङ्घन से बिगड़ गया।

बालक उसी हालत में स्वस्थ हो सकता है जब कि उसका पिता विजातीय-द्रव्य से खाली हो। प्रकृति पेट के बच्चे का पालन माता-पिता के स्वच्छ से स्वच्छ परमाणुओं से करती है किन्तु पैतृक विजातीय-द्रव्य का असर बालक पर पड़ता ही है और इसलिये वह रोगी दशा में संसार में जन्म लेता है। अब यदि अस्वाभाविक भोजन और रहन-सहन से विजातीय द्रव्य और भी बढ़ता गया तो उसके सब अंग कमजोर पड़ जायगे और

यथा जब बड़ा होगा तो उसमें भी सब पैतृक बीमारियाँ उत्पन्न हो जायँगी अतएव यदि विजातीय-द्रव्य शरीर से निकाल दिया जाय तो बच्चा अत्यन्त स्वस्थ हो सकता है।

यही बात स्त्री के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। यदि स्त्री लड़कपन से स्वाभाविक ढंग से रहे और वह एक ऐसे पुरुष के साथ ब्याही जाय जो स्वाभाविक ढंग से रहता हो तो इसमें कोई शक नहीं कि उस स्त्री को बच्चा उत्पन्न करने में कुछ भी दर्द न होगा और उसकी जान आजकल की स्त्रियों की तरह खतरे में न पड़ेगी।

प्रकृति में हम यह बात कभी नहीं पाते कि कोई भी पशु बच्चा पैदा करने के बाद बदसूरत हो जाता हो किन्तु मनुष्य प्राणी में चेहरे का भद्दा हो जाना बहुत देखने में आता है। जब स्त्री बच्चा पैदा करती है तो उसका चेहरा एक दम पीला पड़ जाता है। ऐसा मालूम होता है जैसे उसने एक मास का उपवास किया हो।

मनुष्य प्राणी को छोड़कर प्रकृति में हम कभी नहीं देखते कि गर्भवती होने पर भोग की इच्छा उसमें हो। इसके विरुद्ध वह भोग के लिये एक दम अस्वीकार करेगी। वास्तव में भोग का ध्येय केवल प्रसन्नता ही नहीं है बल्कि गर्भाधान है। मैथुन के समय इस हालत में खून का बहाव जननेन्द्रिय की तरफ होता है और वह पेट के बच्चे को भारी हानि पहुँचाता है। इस मैथुन से स्त्री के स्वास्थ्य पर भी बड़ा धक्का पहुँचता है, क्योंकि प्रकृति गर्भाशय को हरएक हानिकारक वस्तु से बचाये रहना चाहती है। यदि प्रकृति के इस नियम का उल्लंघन किया गया और गर्भ की हालत में भोग किया गया तो स्त्रियों को नाना प्रकार की बीमारियों का सामना करना पड़ता है।

गर्भ के दिनों में जो गर्भवती स्त्रियों को पीड़ा होती है व

वास्तव में प्रकृति के इस नियम के उल्लङ्घन का परिणाम है। स्त्री को प्रातःकाल कै होती है, उसका जी मिचलाता है, दाँत में पीड़ा होती है, ज्वर रहता है, उदासी रहती है। शरीर में सुर सुराहट पैदा होती है, और नाना प्रकार की चीजों के खाने का उसका जी चाहता है। कुछ दशाओं में यह दशायें पैतृक विजातीय-द्रव्य से भी उत्पन्न हो सकती हैं। किसान लोग इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि जब पशुओं की कामेच्छा अधिक बढ़ जाती है तो उनमें नाना प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यही हालत मनुष्य की भी है। मनुष्य-प्राणी जब आवश्यकता से अधिक मैथुन करने लगता है तो उसको क्षय रोग विशेष रूप से होता है।

स्वस्थ मनुष्य की भोगेच्छा रोगी मनुष्यों की भोगेच्छा से भिन्न होती है। वे तमाम गन्दे विचारों से अलग रहते हैं और केवल सन्तान उत्पत्ति के लिये भोग करते हैं। न तो मनुष्य के लिये आवश्यक ही होना चाहिये और न बहुत समय व्यतीत हो जाने पर उसे अधीर होना चाहिये। स्वस्थ मनुष्य स्वाभाविक भोजन और स्वाभाविक रहन सहन से अपनी इंद्रियों को अपने वश में रखता है। जो लोग ब्रह्मचारी रहते हैं वे हमेशा स्वस्थ और सुखी रहते हैं।

हर जगह हम यह सुनते हैं कि अमुक स्त्री का गर्भपात हुआ और अमुक स्त्री को समय से पहिले बच्चा उत्पन्न हुआ। कहीं अमुक बच्चे के हाथ नहीं और कहीं अमुक बच्चे का सर बड़ा होता है। यह सब क्यों होता है? वास्तव में इसका कारण विजातीय-द्रव्य है जो माता के शरीर में रहता है और बच्चे में भी आ जाता है।

जो बच्चा गर्भ में रहता है वह अपने स्थान से माता के विजातीय-द्रव्य के कारण या गर्भ के समय भोग के कारण हट

जाता है। विजातीय द्रव्य के कारण स्त्री की जननेंद्रिय जब संकुचित हो जाती है तो उसे अधिक पीड़ा का सामना करना पड़ता है। यदि कहीं बच्चे में भी विजातीय-द्रव्य उतर आया तो वह एक बड़ा सर लेकर पैदा होता है। इस बड़े सर के कारण भी बच्चा पैदा होने के समय माता को बड़ा कष्ट होता है। स्त्री के जननेन्द्रिय के रग-रग में इतना विजातीय द्रव्य भर जाता है कि वहाँ की सब रगें कठोर हो जाती हैं और लच नहीं सकतीं। परिणाम यह होता है कि बच्चा पैदा होने के समय जब उन नसों को फैलाना चाहिये तो वह अपनी जगह पर ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। जिससे स्त्री को बड़ा कष्ट होता है।

तो फिर यदि विजातीय-द्रव्य रहते हुये बच्चा उत्पन्न करने में स्त्रियों को कष्ट हो तो इसमें कौन सी आश्चर्य की बात है। वास्तव में स्वस्थ स्त्री को पीड़ा का डर बिलकुल होना ही न चाहिये। जिस स्त्री को बच्चा होने में अधिक कष्ट होता है उसका अन्तरात्मा उसको बता देती है कि मैंने न मालूम कितनी बार प्रकृति के नियमों का उल्लंघन किया है और उसी का मैं यह फल भोग रही हूँ।

मनुष्य जाति चिरकाल से गिरती जा रही है और इसलिए जो तकलीफ बच्चा पैदा होने के समय स्त्री को होती है उसे कोई रोक नहीं सकता। कूने साहब की राय है कि स्त्री को प्रकृति पर छोड़ देना चाहिये। प्रकृति से बढ़कर स्त्री की सहायता और कोई दूसरा डाक्टर नहीं कर सकता। जब प्रसूत पीड़ा हो तो प्रसूत पीड़ा को शान्त करने के लिए सिट्ज बाथ और पेडू पर मिट्टी की पट्टी से बढ़कर और कोई आरोग्य औषधि नहीं है। मिट्टी की पट्टी घन्टे या दो घंटे में बदल देना चाहिए और उसके ऊपर ऊन का कपड़ा बाधना चाहिये। इससे बच्चा बहुत जल्द हो सकता है।

जल्द बाजी से डाक्टरों को बुला कर चीड़ फाड़ कराने के कारण हजारों स्त्रियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। यदि डाक्टरों को न बुला कर स्त्रियाँ प्रकृति की शरण जाँय तो उनका जीवन अत्यन्त सुखमय हो सकता है। यदि बिना यंत्र की सहायता से स्त्री को बच्चा नहीं पैदा होता तो इसमें दोष स्त्री का है क्योंकि जिस समय से वह गर्भवती होती है उसी समय से वह बिना कष्ट के बच्चा पैदा करने का प्रबन्ध करने लगती है, किन्तु अंत में उसे सफलता नहीं होती। स्वाभाविक भोजन और सिट्ज बाथ ये ही दो ऐसे शस्त्र हैं जिनके लगातार प्रयोग से सुगमता से संतान उत्पन्न हो सकती है। सिट्ज बाथ एक ऐसा स्नान है जिसकी प्रशंसा जितनी की जाय उतनी कम है, इसके गुण अनेक हैं और कूने साहब के ईजाद के किये हुए स्नानों में बड़ा महत्त्व रखता है।

अतएव जिन स्त्रियों को स्वस्थ संतान उत्पन्न करना है उन को स्नान और स्वाभाविक भोजन द्वारा अपने शरीर को विजातीय-द्रव्य से पहले से ही शुद्ध कर लेना चाहिये।

एक स्त्री थी जिसको बहुत समय से गठिया का रोग हो गया था। उसके पेट में विजातीय-द्रव्य अधिक संचित था। वह पाँच बच्चों को जन्म दे चुकी थी और हर बच्चे के जन्म के समय उसको कठिनाई का सामना करना पड़ा था। दो तीन रोज पीड़ा होने के बाद तब कहीं बच्चा पैदा होता था। जब छठा बच्चा गर्भ में आया तो वह कूने साहब से मिली और उनकी सम्मति से वह प्रति दिन कभी दो कभी तीन सिट्ज बाथ लेने लगी। परिणाम इसका यह हुआ कि छठा बच्चा बड़ी आसानी से उत्पन्न हुआ और उसको पीड़ा नहीं हुई।

बच्चा उत्पन्न होने के पीछे का प्रबन्ध—

यह बतया या जा चुका है कि जब बच्चा पैदा करता है

तो वह उसी रोज से इधर उधर घूमने लगता है। एक मनुष्य प्राणी ही ऐसा है जिसे सौरी से बाहर निकलने में कई दिन लगते हैं। पहले नौ दिन का समय रक्खा गया था और अब डाक्टर लोग बारह दिन तक रहने की सम्मति देते हैं। हिन्दुस्तान के घरों की स्त्रियाँ करीब-करीब एक महीना ले लेती हैं।

सौरी के भीतर बहुत दिन तक रहने से स्वास्थ्य को भारी धक्का पहुँचता है। शरीर के न हिलने-डुलने के कारण पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है और स्त्रियों को प्राय: कब्ज रहता है। साथ ही इसके जब तक गर्भाशय ठीक न हो जाय तब तक सौरी से बाहर निकलना भी हानिकारक है। अतएव सौरी के भीतर जितने समय की जरूरत हो उतने ही समय तक कम से कम रहना चाहिये।

कूने साहब ने एक बहुत ही सरल उपाय निकाला है जिसके अनुसार चलने से स्त्री जल्द से जल्द सौरी से निकल सकती है। वह यह है। स्त्री ज्योंही बच्चा पैदा कर सके त्योंही जितना वह आवश्यक समझे उतने ही समय तक आराम करे। अगर वह सो जाय तो और भी अच्छा है। तब उसे ७२° से ७७° फैरनहाइट पानी में सिट्ज बाथ लेना चाहिये। स्नान के बाद पेडू में एक छिद्रदार सन की पट्टी बाँधना चाहिये। इस तरीके से भीतर के कोठों को काफी सहायता मिलती है और स्त्री में शक्ति आती है। अगर स्त्री की तबियत न भरे तो तीन-चार रोज बाद पट्टी बाँधना चाहिये और उसे तीन या चार सप्ताह तक बराबर बाँधना चाहिये। यदि और कोई आपत्ति न पैदा हो तो पट्टी का बाँधना काफी है किन्तु स्त्री को ज्वर मालूम हो तो सिट्ज बाथ लेते रहना चाहिये और मिट्टी की पट्टी बाँधना चाहिये। इससे बुखार दूर हो जायगा और शरीर में शक्ति आवेगी।

१७—फुटकर बीमारियाँ

फोड़ा—जब किसी स्थान पर फोड़ा निकलने को होता है तो वहाँ पर सूजन पैदा होती है और वह स्थान लाल लाल हो जाता है। तत्पश्चात् जब वह पकता है तो उसमें मवाद आ जाती है। प्रारम्भ में ठंडे पानी की पट्टी या मिट्टी का पैंडज देना चाहिये, और पीछे केवल ठन्डे पानी की पट्टी साथ साथ हिपबाथ और सिट्ज़बाथ लेना चाहिये। खाने पीने का परहेज भी अत्यन्त आवश्यक है।

शीतला या चेचक—यह एक भयानक और छूत की बीमारी है। इसमें पहले जाड़ा देकर बुखार आता है और फिर शरीर भर में दर्द होता है। पेड़ू, कमर और भुजदण्ड में विशेष-रूप से दर्द होता है।

यदि पाखाना साफ न होता हो तो सबसे पहले पाखाना होने का प्रबन्ध करना चाहिये यानी पेड़ू में मिट्टी की पट्टी बाँधना चाहिये और एनीमा लेना चाहिए। इसके पश्चात् हिपबाथ और सिट्ज़बाथ लेना चाहिए। चेचक के रोगी को प्यास अधिक लगती है। इसलिए जब वह पानी माँगे तो ठंडा पानी बराबर पिलाते रहना चाहिये। भोजन का नियम पूरा रखना चाहिये। यदि चार-पाँच रोज तक केवल पानी ही पिया जाय तो और भी अच्छा हो। जब दाने मुरझाने लगें और रोगी को भूख लगे तो पक्व फल या मोटे आटे की रोटी या फल देना चाहिये। जब दाने बिल्कुल सूख जायँ तब उसे भर पेट भोजन देना चाहिए।

भगंदर—भगंदर की बीमारी कब्ज से पैदा होती है या जब मलद्वार में किसी प्रकार चोट लग जाती है तो उसके बाहरी भाग में भगंदर हो जाता है। जल-चिकित्सा में बाहरी और भीतरी

भगंदर चिकित्सा एक ही है। इस बीमारी में एक सिट्ज़बाथ और एक हिपबाथ लेना चाहिये और कभी २ बीच में भगंदर के स्थान पर स्टीम बाथ। गुदा के द्वार में कीचड़ का लेप करना चाहिये। ठण्डे पानी के स्नान और कीचड़ के बैंडेज से भगंदर बहुत जल्द अच्छा होता है।

खुसरा।—(Eczema) यह बीमारी अधिक भोजन करने से होती है। अथवा यह बीमारी उन लोगों को होती है जो अधिक परिश्रम करते हैं और जिनका जीवन अनियमित होता है। घाव में गीले कपड़े या कीचड़ का बैंडेज बाँधना चाहिये और हिपबाथ और सिट्ज़बाथ लेना चाहिये। सप्ताह में दो बार ज़खमी स्थान पर स्टीमबाथ और सनबाथ लेना चाहिये। पथ्य पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये।

दाद—यह बीमारी बहुतायत देखने में आती है। बहुत कम ऐसे पुरुष मिलेगें जिनको दाद न हुआ हो। इस बीमारी में दाद के ऊपर मिट्टी का बैंडेज बाँधना चाहिए। और हिपबाथ और सिट्ज़बाथ लेना चाहिये। सप्ताह में दो दिन स्थानिक स्टीम बाथ लेना चाहिए। भोजन हलका करना चाहिए।

जीभ के छाले—पेट में मल के सचित होने से यह बीमारी पैदा होती है। इसमें हिपबाथ और सारे शरीर स्नान के विशेष लाभकारी हैं। साफ मिट्टी से दाँत रगड़ना चाहिए और दिन भर में दस पन्द्रह बार ठण्डे पानी से कुल्ला करना चाहिए। पेडू में ठण्डे पानी का प्रयोग या मिट्टी की पट्टी से दस्त बहुत जल्द होता है।

मसूड़ा फूलना—मुँह के भीतर खूब स्टीम बाथ लेना चाहिए। सिट्ज़बाथ और हिपबाथ लेना चाहिए। बलुही मिट्टी

मे गूम तौर मलना चाहिए। जहाँ दर्द हो वहाँ मिट्टी का लेप करना चाहिए।

पित्ती का उछलना—इसमें शरीर भर में लाल २ चकत्ते पड़ आते हैं और भूख खुल भी पैदा होती है। शरीर भर में मिट्टी का लेप करना चाहिए और हिपबाथ और सिट्ज़बाथ लेना चाहिए। भोजन हलका करना चाहिए।

पोते का बढ़ना—यह बीमारी कब्ज़ से पैदा होती है अत एव पेड़ू में मिट्टी की पट्टी बाँधना चाहिए। इसके पश्चात् हिप बाथ और सिट्ज़बाथ लेना चाहिए। सप्ताह में दो बार स्थानिक स्टीम बाथ लेना चाहिए। रात को गीला कपड़ा और उसके ऊपर ऊनी कपड़ा बाँध कर सोना चाहिए।

१८—लुई कूने द्वारा अच्छे किये हुए रोगी

आरोग्यता विषयक रिपोर्ट तथा धन्यवाद के पत्र

जल-चिकित्सा कितनी लाभदायक है और इसके द्वारा कितने निराश रोगियों को भी आरोग्य लाभ हुआ है इसे दिखलाने के लिए यहाँ पर कुछ थोड़ी सा आरोग्यता सम्बन्धी रिपोर्टें तथा धन्यवाद के पत्र जो कूने साहब के पास आये थे, प्रकाशित किए जाते हैं। इन पत्रों और रिपोर्टों में से अधिकतर बिना माँगे ही भेजे गए हैं। इन पत्रों के प्रकाशन का आशय यह है कि संसार देखे कि जल-चिकित्सा कितनी लाभदायक है, और उससे लाभ उठावे।

नरवस डेबिलिटी (पट्ठों की कमज़ोरी), नींद न आना अँतड़ियों की जलन, जिगर का चर्बी

मिसेज आर 'R' को Nervous Debility (पुट्ठों की कमज़ोरी) हो गई थी। उन्हें रात-रात भर नींद न आती था। आँखों में सख्त जलन रहा करता था। भूख नहीं लगती थी और

जिगर की पथरी के कारण जिगर में पीड़ा होती थी। औषधियों और पिचकारी के बगैर उन्हें पाखाना नहीं होता था। प्रति मास उनका पेट बढ़ता गया और धीरे-धीरे उनकी दशा बिगड़ती गई।

ऐसी शोकमय दशा में उन्होंने मेरी सहायता चाही। मैंने अपनी चिकित्सा रीति के अनुसार उन्हें दो से पाँच तक नित्य फ्रिक्शन बाथ, (friction baths) सप्ताह में एक दो स्टीम बाथ और मांस रहित भोजन दिया। पहले ही सप्ताह में उन्हें कुछ लाभ हुआ। दूसरे सप्ताह में उन्हें नींद भी आई, भूख भी खुली और पाखाना भी ठीक हुआ। तीसरे सप्ताह में पट्ठों की खराबी दूर हो गई। चौथे सप्ताह में उनका पेड़ अपनी ठीक हालत पर आ गया। पाँच सप्ताह के पश्चात् जिगर की पथरियाँ घुलने लगीं। सातवें सप्ताह में रोगी भली भाँति निरोग हो गया।

फेफड़े की जलन, ठंढे पैर, आमाशय की व्याधि, जिगर के राग और फैरिंग्स की जलन।

Mr H of L. ने जिनके फेफड़े में जलन थी, पैर ठंढे रहते थे, जिगर का रोग था और फैरिंग्स की जलन थी, मेरी चिकित्सा का प्रारम्भ २७ वर्ष की आयु में प्रारम्भ किया। उनकी चिकित्सा करते समय पहले फ्रिक्शन हिप बाथ पर फिर फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ पर अधिक ध्यान दिया गया। अनुकूल भोजन दिया गया। फल यह हुआ कि दूसरे ही दिन पाचन शक्ति में आराम होने लगा। इसके पश्चात् धीरे-धीरे सभी रोगों में बराबर आराम होता रहा और तीन सप्ताह के पश्चात् उसके सारे रोग नष्ट हो गए। रोगी को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसके पैर बिना किसी अन्य दवा के रोग उत्पन्न होने के पहिले ही की भाँति गरम रहने लगे।

कमलवायु, दुर्बलता, कई प्रकार की शिरपीड़ा

लिपजिग निवासिनी मिसेज एस की युवती कन्या को कमलवायु का रोग हो गया था। जिससे उनके सिर में पीड़ा रहा करती थी। कमजोरी के साथ ही आलस्य रहता था। काम करने को जी न चाहता था। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। आँखें पीली पड़ गई और धीरे धीरे शरीर के सभी अंग पील होते गये। ऐसा जान पड़ता था कि वह ज्वर से पीड़ित है। मैंने उस अनुसे अक भोजन देना प्रारम्भ किया और तीन फ़िक्शन बाथ मड़े हुए मादे को निकालने के लिए दिया। दो ही सप्ताह में कमलवायु पूर्ण रीति से आती रही।

लुंजापन, लँगड़ापन—

१२ वर्ष की आयु का एमवाल जेह नामी बालक कड़ी सर्दी के कारण और खाँसी आने के कारण लुंजापन के रोग का शिकार हो गया। बहुत से वैद्यों ने अप्राकृतिक चिकित्सा करके उसके रोग को ऐसा खराब कर दिया कि उसका कूल्हा कड़ा हो गया और वह लगभग लँगड़ा हो गया। उसकी दाहिनी टाँग बाई की अपेक्षा पतली और छोटी हो गई। मैंने उसे फ़िक्शन बाथ दिए और अनुसे अक भोजन का सेवन कराया। शीघ्र ही उसे लाभ हुआ। केवल १४ दिन में ही वह बालक बहुत चलने योग्य हो गया। एक महीने में उसका कूल्हा फिर मुलायम हो गया और लुंजेपन के सारे चिन्ह जाते रहे। ६ महीने में उसके दोनों पैर जो घट-बढ़ गए थे बिलकुल ठीक दशा में आ गये।

सर्वांग दुर्बलता, कमर पीड़ा, खून की कमी, ठंडे हाथ पाँव

P स्थान के निकट W निवासिनी मिसेज E. बहुत से रोगों में ग्रस्त और गर्भवती थीं। उनके शरीर में खून की कमी थी, कमर में पीड़ा रहती थी और हाथ पाँव ठंडे रहते थे।

डाक्टरों की दवा से कुछ भी लाभ न होने पर उन्होंने मेरी शरण ली। मैंने उन्हें प्रतिदिन एक हिप बाथ, दो फ्रिक्शन सिट्ज बाथ और तत्पश्चात् धूप में तापना बतलाया। भोजन सादा और अनुत्तेजक करने की सलाह दी। छः महीने के पश्चात् वह मेरे पास फिर आईं। उस समय वे भलीभाँति स्वस्थ थीं। एक मास पूर्व उन्हें बालक उत्पन्न हुआ था। इस बार पहिले की भाँति पुत्र प्रसव में भी उन्हें अधिक पीड़ा न हुई थी। बालक हृष्ट पुष्ट और आरोग्य था। वह खूब दूध पीता था।

गिल्टी का फोड़ा—

E नामवाली एक नव वर्ष की कन्या की गर्दन में बाईं ओर एक गिल्टी निकल आई। थोड़े ही दिनों में वह बढ़कर एक बड़े अंडे के समान हो गई। मैंने उसे रोज, आध आध घंटे के पश्चात् हिप और सिट्ज बाथ लेने को कहा। सप्ताह में दो बार स्टीम बाथ भी लेने को कहा। साथ ही उचित आहार का प्रयोग बतलाया। तीन सप्ताह के पश्चात् उसे स्टीम बाथ अरुचिकर हो गया। उसका सिर फोड़े के कारण एक ओर को झुक गया था और वह उसे हिला-डुला न सकती थी। अस्तु, स्टीम बाथ के स्थान पर बर्दाश्त करने योग्य गर्म जल की गद्दियों का प्रयोग किया गया। ऐसा करने से कुछ दिनों में दो छोटे-छोटे छिद्र मटर के दाने के समान प्रकट हुए और उनमें से पीब निकली। शीघ्र ही फोड़ा घटने लगा और एक महीने में लड़की स्कूल जाने योग्य हो गई। पाँच सप्ताह में उसे रोग का चिन्ह भी शेष न रहा। वह सरलता पूर्वक अपनी गर्दन को इधर-उधर हिला सकती थी।

स्तन व नाक का सर्तान

रोहॅटिस के रहनेवाले एक कसाई की स्त्री Mrs S. के स्तन और नाक में रोग हो गया था। जब डाक्टरों से उसे कुछ भी

कमलवायु, दुर्बलता, कई प्रकार की शिरपीड़ा

लिपज़िग निवासिनी मिसेज एल की युवती कन्या का कमलवायु का रोग हो गया था। जिससे उनके सिर में पीड़ा रहा करती थी। कमज़ोरी के साथ ही आलस्य रहता था। काम करने को जी न चाहता था। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। आँखें पीली पड़ गई और धीरे धीरे शरीर के सभी अंग पीले होते गये। ऐसा जान पड़ता था कि वह ज्वर से पीड़ित है। मैंने उसे अनुत्तेजक भोजन देना प्रारम्भ किया और तीन मिश्रान स्नान सड़े हुए मादे को निकालने के लिए दिया। दो हा सप्ताह में कमलवायु पूर्ण रीति से जाती रही।

लुजापन, लँगड़ापन—

१२ वर्ष की आयु का एसवाल जेब नामी बालक कड़ी सर्दी के कारण और खाँसी आने के कारण लुजापन के रोग का शिकार हो गया। बहुत से वैद्यों ने अप्राकृतिक चिकित्सा करके उसके रोग को ऐसा खराब कर दिया कि उसका कूल्हा कड़ा हो गया और वह लगभग लँगड़ा हो गया। उसकी दाहिनी टाँग बाईं की अपेक्षा पतली और छोटी हो गई। मैंने उसे मिश्रान स्नान दिए और अनुत्तेजक भोजन का सेवन कराया। शीघ्र ही उसे लाभ हुआ। केवल १४ दिन में ही वह थोड़ा बहुत चलने योग्य हो गया। एक महीने में उसका कूल्हा फिर मुलायम हो गया और लुजपन के सारे चिन्ह जाते रहे। ६ महीने में उसके दोनों पैर जो घट-बढ़ गए थे बिलकुल ठीक दशा में आ गये।

सर्वाङ्ग दुर्बलता, कमर पीड़ा, खून की कमी, ठंढे हाथ पाँव

P स्थान के निकट W निवासिनी मिसेज L बहुत से रोगों से ग्रस्त और गर्भवती थी। उसके शरीर में खून की कमी थी, कमर में पीड़ा रहती थी और हाथ पाँव ठंढे रहते थे।

डाक्टरों की दवा से कुछ भी लाभ न होने पर उन्होंने मेरी शरण ली। मैंने उन्हें प्रतिदिन एक हिप बाथ, दो फ्रिक्शन सिट्ज बाथ और तत्पश्चात् धूप में तापना बतलाया। भोजन सादा और अनुत्तेजक करने की सलाह दी। छ: महीने के पश्चात् वह मेरे पास फिर आई। उस समय वे भलीभाँति स्वस्थ थीं। एक मास पूर्व उन्हें बालक उत्पन्न हुआ था। इस बार पहिले की भाँति पुत्र प्रसव में भी उन्हें अधिक पीड़ा न हुई थी। बालक हृष्ट पुष्ट और आरोग्य था। वह खूब दूध पीता था।

गिल्टी का फोड़ा—

E नामवाली एक नव वर्ष की कन्या की गर्दन में बाई ओर एक गिल्टी निकल आई। थोड़े ही दिनों में वह बढ़कर एक बड़े अंडे के समान हो गई। मैंने उसे रोज, आध-आध घंटे के पश्चात् हिप और सिट्ज बाथ लेने को कहा। सप्ताह में दो बार स्टीम बाथ भी लेने को कहा। साथ ही उचित आहार का प्रयोग बतलाया। तीन सप्ताह के पश्चात् उसे स्टीम बाथ अरु-चिकर हो गया। उसका सिर फोड़े के कारण एक ओर को झुक गया था और वह उसे हिला-डुला न सकती थी। अस्तु, स्टीम बाथ के स्थान पर बर्दाश्त करने योग्य गर्म जल की गद्दियों का प्रयोग किया गया। ऐसा करने से कुछ दिनों में दो छोटे-छोटे छिद्र मटर के दाने के समान प्रकट हुए और उनमें से पीब निकली। शीघ्र ही फोड़ा घटने लगा और एक महीने में लड़की स्कूल जाने योग्य हो गई। पाँच सप्ताह में उसे रोग का चिन्ह भी शेष न रहा। वह सरलता पूर्वक अपनी गर्दन को इधर-उधर हिला सकती थी।

स्तन व नाक का सर्तान

रोरेंटिस के रहनेवाले एक कसाई की स्त्री Mrs S. के स्तन और नाक में रोग हो गया था। जब डाक्टरों से उसे कुछ भी

कमलवायु, दुर्बलता, कई प्रकार की शिरपीड़ा

लिपजिग निवासिनी मिसेज एम की युवती कन्या को कमलवायु का रोग हो गया था। जिससे उनके सिर में पीड़ा रहा करती थी। कमजोरी के साथ ही आलस्य रहता था। काम करने को जी न चाहता था। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। आँखें पीली पड़ गई और धीरे धीरे शरीर के सभी अंग पीले होते गये। ऐसा जान पड़ता था कि वह ज्वर से पीड़ित है। मैंने उस अनुसार उक भोजन देना प्रारम्भ किया और तीन फिक्शन बाथ मरे हुए मादे को निकालने के लिए दिया। दो ही सप्ताह में कमलवायु पूर्ण रीति से जाती रही।

लु जापन, लँगड़ापन—

१२ वर्ष की आयु का एलवाल जड नामी बालक कड़ी सर्दी के कारण और खाँसी आने के कारण लु जापन के रोग का शिकार हो गया। बहुत से वैद्यों ने अप्राकृतिक चिकित्सा करके उसके रोग को ऐसा खराब कर दिया कि उसका कूल्हा पका हो गया और वह लगभग लँगड़ा हो गया। उसकी दाहिनी टाँग बाई की अपेक्षा पतली और छोटी हो गई। मैंने उसे फिक्शन बाथ दिए और अनुसार उक भोजन का सेवन कराया। शीघ्र ही उसे लाभ हुआ। केवल १५ दिन में ही वह थोड़ा बहुत चलने योग्य हो गया। एक महीने में उसका कूल्हा फिर मुलायम हो गया और लु जेपन के सारे चिन्ह जाते रहे। ६ महीने में उसके दोनों पैर जो घट-बढ़ गए थे बिलकुल ठीक दशा में आ गये।

सर्वाङ्ग दुर्बलता, कमर पीड़ा, खून की कमी, ठंढ हाथ पाँव

P स्थान के निकट W निवासिनी मिसेज E. बहुत से रोगों में ग्रस्त और गर्भवती थीं। उनके शरीर में खून की कमी थी, कमर में पीड़ा रहती थी और हाथ पाँव ठंढे रहते थे।

डाक्टरों की दवा से कुछ भी लाभ न होने पर उन्होंने मेरी शरण ली। मैंने उन्हें प्रतिदिन एक हिप बाथ, दो फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ और तत्पश्चात् धूप में तापना बतलाया। भोजन सादा और मलुत्तेजक करने की सलाह दी। छः महीने के पश्चात् वह मेरे पास फिर आई। उस समय वे भलीभाँति स्वस्थ थीं। एक मास पूर्व उन्हें बालक उत्पन्न हुआ था। इस बार पहिले की भाँति पुत्र प्रसव में भी उन्हें अधिक पीड़ा न हुई थी। बालक हृष्ट पुष्ट और आरोग्य था। वह खूब दूध पीता था।

गिल्टी का फोड़ा—

E नामधारी एक नव वर्ष की कन्या की गर्दन में बाईं ओर एक गिल्टी निकल आई। थोड़े ही दिनों में वह बढ़कर एक बड़े अंडे के समान हो गई। मैंने उसे रोज, आध आध घंटे के पश्चात् हिप और सिट्ज़ बाथ लेने को कहा। सप्ताह में दो बार स्टीम बाथ भी लेने को कहा। साथ ही उचित आहार का प्रयोग बतलाया। तीन सप्ताह के पश्चात् उसे स्टीम बाथ अरुचिकर हो गया। उसका सिर फोड़े के कारण एक ओर को झुक गया था और वह उसे हिला-डुला न सकती थी। अस्तु, स्टीम बाथ के स्थान पर बर्दाश्त करने योग्य गर्म जल की गद्दियों का प्रयोग किया गया। ऐसा करने से कुछ दिनों में दो छोटे-छोटे छिद्र मटर के दाने के समान प्रकट हुए और उनमें से पीब निकली। शीघ्र ही फोड़ा घटने लगा और एक महीने में लड़की स्कूल जाने योग्य हो गई। पाँच सप्ताह में उसे रोग का चिन्ह भी शेष न रहा। वह सरलता पूर्वक अपनी गर्दन को इधर उधर हिला सकती थी।

स्तन व नाक का सर्तान

रोईटिंग के रहनेवाले एक कसाई की स्त्री Mrs S. के स्तन और नाक में रोग हो गया था। जब डाक्टरों से उसे कुछ भी

आराम न हुआ तो उसकी इच्छानुसार मैं उसे देखने गया। जब मैंने उसे देखा उस समय उसकी दशा बड़ी ही शोचनीय थी। स्तन के ऊपर एक इतना गहरा घाव था कि वह हाथ से ढँका नहीं जा सकता था। घाव सड़ गया था और दिन प्रतिदिन भीतर ही भीतर बढ़ता जाता था। उसकी नाक भी आधी नष्ट हो चुकी थी और माथे पर दो लाल रसौलियाँ हो गई थीं जो फूटने ही पर थीं। मैंने भली भाँति उसकी जाँच करके आवश्यक सलाह दी जो अति सफल हुई। पहले रसौलियाँ लोप हो गई। फिर स्तन को आराम हुआ। अन्त में उसकी नाक भी अच्छी हो गई। केवल ६ मास के थोड़े समय में उस सब रोगों से छुटकारा हो गया।

टाँग पर खुले हुए घाव

बराजील नियामी स्कूल के एक मास्टर मिस्टर एक के टाँगों पर खुले हुए घाव हो गए थे। उनके अच्छा करने के लिए इन्होंने अपना बहुत सा धन पानी की तरह डाक्टरों की चिकित्सा में बहाया परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। बल्कि समय के साथ साथ, धीरे-धीरे उनके घाव भी बढ़ते जाते थे और वे कुछ भी काम करने के योग्य न रह गए थे। दैवयोग मेरी "The new science of Healing' नामक पुस्तक उनके हाथ लगी। उचित रूप से चिकित्सा करने से शीघ्र ही वे अच्छे हो गए। अपने इस आरोग्यता के सम्बन्ध में उन्होंने सब बातें जर्मन के Tortcalegre समाचारपत्र में छपवाया।

मूत्राशय का रोग अथवा जिगर का रोग

पी स्थान के रहनेवाली मिसेज पी को गुर्दे का रोग-अथवा दर जिगर का रोग हो गया था। उनकी इच्छानुसार मैंने उनकी चिकित्सा की। दो हिप बाथ, एक सिंकबाथ सिट्ज बाथ और स्वाभाविक भोजन मैंने उसके लिए नियत किये। जबोदर धीरे

धीरे आराम होने लगा। थोड़े ही दिनों में वह ऐसी चंगी हो गई कि उन्हें देखकर अनुमान भी नहीं किया जा सकता था कि वह कभी बीमार रही होगी।

पेंचिश

मिसेज W नाम की एक अमेरिकन लेडी चार वर्ष से पेचिश से परेशान थी। जब अनेक दवाइयाँ कर चुकने पर भी उसे लाभ न हुआ तो उसने मेरी चिकित्सा प्रारम्भ की। मैंने उसे प्रतिदिन तीन बार शीत पहुँचानेवाला स्नान, और प्रति सप्ताह तीन स्टीम बाथ बताए। उसके लिए शीघ्र पचनेवाला भोजन बतलाया। तीन सप्ताह के पश्चात वह बिल्कुल नीरोग हो गई।

आँत की जलन

डी निवासी मिस्टर एम की आँत में बहुत दिनों से जलन रहा करती थी और इसीसे उसे एक भयङ्कर रोग उत्पन्न हो गया था। सितम्बर मास के आरम्भ में रोगी ने मेरी चिकित्सा शुरू की। शीघ्र ही आँत की जलन जाती रही। उसकी पाचन शक्ति ठीक होगई। उसके पेट में बहुत दिनों से जो विकार उत्पन्न हो गया था वह धीरे-धीरे निकलता रहा और दशा धीरे-धीरे अच्छी होती रही। दो महीन में जब उसका तौल १५ पौंड घट गया तो उसे पूरा पूरा आराम मिल गया और उसकी तन्दुरुस्ती ठीक हो गई। फिर उसके पसीजनवाले पैर ठीक हो गए।

ऋतु का मारी दोष, गर्भाशय से रुधिर बहना

लिपजिग निवासिनी मिसेज W को आठ वर्ष से अनियमित मासिक धर्म होने की शिकायत थी। कभी-कभी तो मासिक धर्म बिलकुल ही बन्द हो जाता था और कभी-कभी उसमें रुधिर इतना अधिक बह जाता था कि वह बिलकुल निर्बल हो गई थी। पहले तो उसने अपने नगर के डाक्टर B से दवा कराई परन्तु जब कुछ लाभ न हुआ तो उसने मेरा इलाज शुरू

किया। मैंने उसे प्रतिदिन फ्रिक्राम सिट्ज़ बाथ लेने और साधारण भोजन करने की सलाह दी। इसका आश्चर्य-जनक प्रभाव हुआ। थोड़े ही समय में रुधिर प्रवाह बन्द हो गया और साथ ही मासिक धर्म भी नियम-पूर्वक होने लगा। उनकी निर्बलता भी समय पाकर दूर हो गई।

थैली के समान रसौली-कानों की झनझनाहट

मिसेज एल के जो कि G Z. की रहनेवाली थीं, कान के नीचे एक थैली की तरह की रसौली अखरोट के बराबर थी। इसीसे उसके कान में झनझनाहट होती थी। तीन वर्ष तक वे सभी प्रकार की चिकित्सा करती रहीं परन्तु जब कुछ लाभ न हुआ तो वह मेरे पास आई। मैंने उन्हें फ्रिक्शन बाथ, स्वाभाविक भोजन, और नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करने का आदेश दिया। आरम्भ के कुछ ही स्नानों के पश्चात् उनके कानों की झनझनाहट जाती रही और छ सप्ताह में वे भली भांति चंगी हो गईं।

नपुंसकता

B निवासी मिस्टर जी पूरे नपुंसक हो गए थे। उन्होंने मेरी बतलाई हुई रीति से फ्रिक्शन हिप बाथ और फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ बारी-बारी से अपने घर पर लिए और निरामिष भोजन किया। छ सप्ताह में उनका रोग जाता रहा।

बालकों का कब्ज

मिस्टर क्यू नाम के एक पादरी का एक छ महीने का बालक कब्ज के रोग में फँस गया था। उसे तीन बार पीने के लिए उबला हुआ दूध दिया जाता था जिससे उसके शरीर में बहुत सा विजातीय-द्रव्य भर गया था और उसे बुखार भी आने लगा था। इसलिए वह बहुत कमजोर हो गया था। लड़के के पिता ने मेरी पुस्तक ध्यान पूर्वक पढ़ी और उसी के अनुसार

बालक को दिन में दो बार हिप बाथ देने आरम्भ किये। जल बहुत गर्म लिया जाता था जिससे कि उसका प्रभाव धीरे-धीरे हुआ। पाँच सप्ताह के उपरान्त बालक की पाचन शक्ति शुद्ध हो गई और वह नीरोग होकर बलवान और मोटा ताजा हो गया। बालक को भोजन के लिए बिना उबाला दूध और जई के आटे की लपसी दी जाती थी।

डिफ्थीरिया, सुर्ख ज्वर

कुछ दिन पहले मुझे मिसेज एस के यहाँ उनके एक वर्ष के बालक को देखने के लिए बुलाया गया। मैंने देखा कि बालक डिफ्थीरिया (सुर्ख ज्वर) से पीड़ित है। भाप के स्नान देने का यंत्र न होने पर भी किसी प्रकार उसे स्टीम बाथ दिया। फिर उसके शरीर को एक कम्बल से अच्छी तरह ढक दिया। जब रोगी को अच्छी तरह पसीना आ गया तो उसे एक एक फ्रिक्शन हिपबाथ दिया गया और उसके पेड़ू को उस समय तक मला गया जब तक उसकी गरमी दूर नहीं हो गई। जब उसका रुक रुककर साँस आना ठीक हो गया तो भय जाता रहा। पाँच दिन के भीतर ही बालक बिलकुल नीरोग होगया। भयानक डिफ्थीरिया को आराम करने की यही रीति है।

बहरापन, शब्द के यन्त्र में रुकावट, आवाज का बैठ जाना

एक बार T के निवासी मिस्टर एम ने मुझसे अपने दाहिने कान के बहरेपन की बाबत सम्मति ली। उस बेचारे को बहिरे-पन के कारण बोलने में कठिनता होती थी। जब मैंने उसके रोग की परीक्षा की तो मुझे उसकी मुखाकृति द्वारा मालूम हुआ कि विकारी द्रव्य (बुरी वस्तु) का बोझ सामने की ओर है। अब मुझे अच्छे फल की आशा हुई। मैंने इलाज प्रारम्भ कर दिया। दस दिन के पश्चात् उस मनुष्य ने मुझे समाचार दिया कि वह अपने बहरे कान से [illegible] सुनता है। साथ ही आवाज

का बैठना और इसके के अन्दर की सुरसुराहट भी कम हो गई। चार सप्ताह के निरन्तर यत्न से उसका रोग दूर हो गया और वह अच्छी तरह सुनने लगा।

साँस की नली में कठिन जलन

लिपजिग निवासी मिस्टर K को पट्ठों की निर्बलता का रोग हो गया था। धीरे-धीरे यह रोग इतना बढ़ गया था कि उनकी साँस की नली में जलन हो गई थी। अनेक उपाय करने पर भी उसका रोग शान्त न हुआ। अन्त में न्यू साइन्स आफ हीलिंग की सहायता से वह बिलकुल नीरोग हो गया। नीरोग हो जाने पर रोगी ने स्वयं कहा—"मुझे नया जीवन प्राप्त हुआ है।"

चेहरे में पट्ठों की पीड़ा, नींद का न आना, आमाशय का फैल जाना

आर निवासी मिस्टर आर० वी० नाम के एक सज्जन जिनकी आयु ३६ वर्ष की थी, चार वर्ष से स्नायु की पीड़ा से ग्रस्त हो रहे थे। उन्होंने बहुत से वैद्यों की सम्मति ली परन्तु कुछ लाभ न हुआ। अन्त में मैंने परीक्षा की और जाना कि यह रोगी आमाशय के फैल जाने के रोग में ग्रसित है। मैंने चिकित्सा प्रारम्भ कर दी। एक ही सप्ताह के भीतर उसकी पाचनशक्ति ठीक हो गई। तीन सप्ताह के पश्चात् वह सुख से सोने लगा। दो मास में वह नीरोग हो गया और उसके रूप रंग में भी बहुत कुछ उन्नति हुई।

कंठमाला, दूर की वस्तुओं का अच्छा नजर आना, गिल्टी पर वर्म

मिस H G नाम की पाठशाला में अध्यापिका थी। उन्हें क्लोरोसिस और कंठमाला का रोग हो गया था। अन्त में उन्हें गिल्टियाँ और रसौलियाँ निकल आई। एक मित्र ने उनको

ध्यान मेरी चिकित्सा की ओर दिलाया। उन्होंने छः महीने तक मेरी बताई हुई विधि से चिकित्सा की। प्रति दिन १५ मिनट से लेकर २० मिनट तक दो फिक्शन सिट्ज बाथ लिए और और बातों में प्राकृतिक नियमानुसार जीवन बिताया। जिसका फल यह हुआ कि उनकी पाचन शक्ति सुधर गई। फिर एक-एक करके सारी गिल्टियाँ भी अच्छी हो गई। साथ ही फेफड़ों का रोग भी दूर हो गया। जब सारी गिल्टियाँ अच्छी हो गई तो आँख का रोग भी अच्छा होने लगा। एक वर्ष के भीतर ही वे भली भाँति देखने लगी और फिर उन्हें चश्मे की आवश्यकता न रही।

बच्चों का कब्ज, नींद न आना, नेत्रों का सूज आना

एक बार एक मेम साहबा अपने दूध पीती बच्ची को लेकर मेरे पास आई। उस लड़की को कब्ज हो गया था और उसे नींद न आती थी। उसकी माता को देखने से मालूम हुआ कि उसे अजीर्ण का रोग है। साथ ही उसके नेत्र में जलन भी रहती थी। चूँकि बच्ची अपनी माँ का दूध पीती थी इसलिए आवश्यकता थी कि पहले उसकी (माँ की) बीमारी दूर की जाय। अस्तु, माँ को रोज एक फ्रिक्शन सिट्ज़बाथ और हिप बाथ लेने के लिये कहा गया। भोजन सादा और अनुत्तेजक बताया गया। शुद्ध वायु में टहलने की अनुमति दी गई। अस्तु शीघ्र ही आराम हुआ। लड़की को तो दो ही दिन की चिकित्सा के उपरान्त नींद आने लगी और उसका कब्ज दूर हो गया। एक सप्ताह में माता की अजीर्णता दूर हो गई और उसके आँखों की जलन भी जाती रही।

नियत समय पर कै होना, फेफड़ों की खराबी

L. निवासी मिस्टर M को बारह वर्षों से कै होने का रोग था। प्रति सप्ताह नियत समय पर एक या दो कै अवश्य हो जाती थी। उन्होंने अनेकों औषधियों का प्रयोग किया

परन्तु लाभ कुछ भी न हुआ। जब उन्होंने मेरी रीति द्वारा हिप बाथ और फिक्शन सिट्ज़ बाथ लेना प्रारम्भ किया और साधारण स्वाभाविक भोजन करने लगे तो उन्हें आशा से अधिक लाभ हुआ। उनकी पाचन शक्ति बिलकुल ठीक हो गई। चार ही सप्ताह के भीतर वमन का आक्रमण बन्द हो गया। अन्त में वह मुझे धन्यवाद देने आए और अपने पुनर्जीवित होने का विश्वास दिलाया।

होंठ का सर्तान—

७० वर्ष के एक वृद्ध पुरुष को होंठ का रोग था। यह रोग बहुत पुराना हो गया था। दिनों दिन होंठ के ऊपर सर्तान (Cancer) बढ़ता चला जाता था और लगातार उनके थूक बहता था। इस प्रकार सर्तान और थूक बहने से उसे बड़ी पीड़ा होती थी। मैंने उसकी चिकित्सा प्रारम्भ की। शीघ्र ही लाभ हुआ। थूक निकलने की भयानकता का अन्त पहले ही दिन हो गया और होंठ धीरे-धीरे अच्छा होने लगा। ग्यारह दिनों में उसका सर्तान ऐसा असाध्य और भयानक रोग अच्छा हो गया।

नाक में खून जम जाना, पाचन शक्ति की मंदता

जेड नामक स्थान में बी नाम का एक व्यापार रहता था। उसे बीस वर्ष से आमाशय की कमजोरी और अजीर्ण का रोग था। उसने इन रोगों से छुटकारा पाने के लिए इतनी अधिक दवाइयों का सेवन किया था कि उसके कारण उसके सब दाँत भी खराब हो गये थे। साथ ही उसकी नासिका और वायु की नालियों में खून जम गया था जो किसी प्रकार भी दूर न होता था।

मिस्टर बी ने मेरी चिकित्सा रीति से कथा करनी प्रारम्भ की। एक ही सप्ताह में उन्हें इतना लाभ हुआ जितना लगातार बीस वर्ष की चिकित्सा से भी न हुआ था। धीरे-धीरे खून का जमना बन्द हो गया और रोगी निरोग हो गया। उसको

मेरी चिकित्सा पर ऐसा विश्वास हुआ कि मुझसे विदा होते समय वह मुझसे कहने लगा कि अब अत्तारी की दूकान पर और उसकी दवाओं पर से मेरा विश्वास उठ गया। मेरा विश्वास हो रहा है कि अत्तारी की दूकान केवल विष ही फैलाती है। अब मैं शीघ्र ही अपने औषधालय को बन्द कर दूँगा।

सेंट वाईटस डैंस (कोरिया वा निद्रा का न आना)

एक स्थान में रहनेवाला जी नाम की एक मेम साहिबा की पाँच साल की छोटी लड़की को निद्रा नहीं आती थी। न तो वह किसी भोजन को पचा सकती थी, न वह चल फिर सकती थी और न कोई वस्तु ही पकड़ सकती थी। हर एक प्रकार की चिकित्सा के प्रयोग का फल जब अच्छा न हुआ तो मेरी चिकित्सा प्रारम्भ की गई। मैंने उसे हिप बाथ और फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ लेने की अनुमति दी और साथ ही शुद्ध वायु में व्यायाम करने और यथार्थ भोजन करने का निर्देश किया। जिसका फल यह हुआ कि केवल एक ही सप्ताह के भीतर वह चलने फिरने के योग्य हो गई।

चिकित्सा बराबर जारी रही और शीघ्र ही उसकी पाचन-शक्ति पुनः बलवती हो गई और उसके सारे रोग दूर हो गये। वह पूर्ण स्वस्थ और बलवती हो गई।

बहरापन, गूंगापन, दिमाग में खून जम जाना

एल नामक स्थान में एक एस नाम की मेम साहबा रहती थीं। उसकी चार वर्ष की एक कन्या गूँगी और बहरी थी। उस की माता का कहना था यह रोग इसे टीका लगाने के कारण हुआ है। यद्यपि माँ ने अपनी पुत्री को नीरोग करने के लिए असंख्य दवाइयों का प्रयोग किया था परन्तु कन्या के रोग में कुछ भी कमी न हुई। मैंने उस लड़की की परीक्षा करके मालूम किया कि उसके भीतर विकारी द्रव्य का बोझ बहुत ही अधिक

है। साथ ही मैंने जाना कि उसके दिमाग में खून भरा हुआ है। मैंने पुत्री की माँ को बताया कि उसे प्रतिदिन एक भिस्नान बाथ दिया जाय, शुष्क स्वाभाविक अनुत्तेजक भोजन दिया जाय। उसे शुद्ध हवा में व्यायाम कराया जाय और सोते समय उसके कमरे की सारी खिड़कियाँ खोल दी जाँय।

ऐसा ही किया गया। दो सप्ताह में खबर मिली कि लड़की की हालत बहुत अच्छी है यह कुछ कुछ सुनने लगी है। चार सप्ताह में वह पूर्ण रीति से अच्छी हो गई। सुनने और बोलने भी लगी। इस प्रकार उसका बहरा और गूँगापन दूर हो गया।

सख्त कब्ज

एक स्थान के रहनेवाले डाक्टर एक की स्त्री को २० वर्ष का पुराना कब्जा का रोग था। वह रोग किसी भी औषधि से अच्छा न होता था। जब वह मेरी सम्मति लेने के लिए आई तो उनकी बातों से मालूम होता था कि उसे ऐसा विश्वास हो चुका है कि अब वह अच्छी न होगी। फिर भी उसने मेरी बताई हुई रीति से दवा करना प्रारम्भ किया। एक ही सप्ताह में स्वाभाविक भोजन करने से उनकी पीड़ा को बहुत आराम हुआ। थोड़े ही दिनों में वह भली भाँति अच्छी हो गई। मैंने उसे बिना छने आटे की रोटी और खट्टे फल खाने के लिए बताया था।

हलक की जलन, मूत्राशय व गुर्दे का रोग, इन्द्रिय सम्बन्धी रोग

प्रिय मिस्टर कुह्ने,

अपने पत्र में आपने चिकित्सा सम्बन्धी जो सम्मति मुझे दी थी वह अति फलदायक प्रमाणित हुई। मूत्राशय और गुर्दों के रोग अब अच्छे हैं। हलक की जलन बिल्कुल जाती रही।

अब मैं पहले की अपेक्षा प्रसन्न और स्वस्थ हूँ। आपकी सम्मति के लिए अनेक अनेक धन्यवाद।

ग्राम वर्ग से } आपका दास—
E. M.

घुटने के जोड़ की जलन, अति व्याकुलता, मस्तिष्क का रुधिर से भर जाना, दिल में चर्बी का बढ़ जाना, जिगर का रोग, अँतड़ियों की बीमारी।

प्रियवर,

थोड़े ही दिन हुए मेरे दाहिने घुटने के जोड़ की गोलाई जलन के कारण २२ इंच हो गई थी। मैं आपके चिकित्सालय में भरती हुआ। साधारण भोजन फ्रिक्शन हिपबाथ, धूप के स्नान (Sunbath) से शीघ्र ही मेरे घुटने की गोलाई १७ इंच रह गई। फिर मैंने आपकी पुस्तक The new Science of healingद्वारा पूर्ण आरोग्यता प्राप्त की। फिर आपकी चिकित्सा रीति द्वारा मुझे व्याकुलता, दिमाग का खून से भर जाना, हृदय के पट्ठों में चर्बी का बढ़ जाना, गुर्दे और जिगर के रोगों से छुटकारा मिला। जिगर के रोग को डाक्टर असाध्य बतलाते थे। मुझे आँखों का रोग भी होने लगा था परन्तु वह भी जाता रहा।

अस्तु, यह पत्र जो आपकी सेवा में बिना माँगे भेजा जा रहा है इसे आप किसी भी सरकारी व कानूनी मतलब के लिए काम में ला सकते हैं। धन्यवाद।

प्रारीना बड़ेलिया } आपका दास
फार्ल एच

अत्यन्त सिर पीड़ा

प्यारे मिस्टर कुहने,

कदाचित् आपको स्मरण होगा कि मैं अपनी पुरानी सिर की

है। साथ ही मैंने जाना कि उसके दिमाग में खून भरा हुआ है। मैंने पुत्री की माँ को बताया कि उसे प्रतिदिन एक फ्रिक्शन बाथ दिया जाय, शुष्क स्वाभाविक अनुपचे जक भोजन दिया जाय। उसे शुद्ध हवा में व्यायाम कराया जाय और सोते समय उसके कमरे की सारी खिड़कियाँ खोल दी जाँय।

ऐसा ही किया गया। दो सप्ताह में खबर मिली कि लड़की की हालत बहुत अच्छी है वह कुछ कुछ सुनने लगी है। चार सप्ताह में वह पूर्ण रीति से अच्छी हो गई। सुनने और बोलने भी लगी। इस प्रकार उसका बहरा और गूँगापन दूर हो गया।

सख्त कब्ज

एक स्थान के रहनेवाले डाक्टर एक की स्त्री को २० वर्ष का पुराना कब्जा का रोग था। यह रोग किसी भी औषधिसे अच्छा न होता था। जब वह मेरी सम्मति लेने के लिए आई तो उसकी बातों से मालूम होता था कि उसे ऐसा विश्वास हो चुका है कि अब वह अच्छी न होगी। फिर भी उसने मेरी बताई हुई रीति से दवा करना प्रारम्भ किया। एक ही सप्ताह में स्वाभाविक भोजन करने से उनकी पीड़ा को बहुत आराम हुआ। थोड़े ही दिनों में वह भली-भाँति अच्छी हो गई। मैंने उसे बिना छने आटे की रोटी और खट्टे फल खाने के लिए बताया था।

हलक की जलन, मूत्राशय व गुर्दे का रोग, इन्द्रिय सम्बन्धी रोग

प्रिय मिस्टर कुहने,

आपने पत्र में आपने चिकित्सा सम्बन्धी जो सम्मति मुझे दी थी वह अति फलदायक प्रमाणित हुई। मूत्राशय और गुर्दा के रोग अब अच्छे हैं। हलक की जलन बिल्कुल जाती रही।

अब मैं पहले की अपेक्षा प्रसन्न और स्वस्थ हूँ। आपकी सम्मति के लिए अनेक अनेक धन्यवाद।

आम वर्ग से }

आपका दास—
E M.

घुटने के जोड़ की जलन, अति व्याकुलता, मस्तिष्क का रुधिर से भर जाना, दिल में चर्बी का बढ़ जाना, जिगर का रोग, अँतड़ियों की बीमारी।

प्रियवर,

थोड़े ही दिन हुए मेरे दाहिने घुटने के जोड़ की गोलाई जलन के कारण २२ इन्च हो गई थी। मैं आपके चिकित्सालय में भरती हुआ। साधारण भोजन फ्रिक्शन सिपबाथ, धूप के स्नान (Sunbath) से शीघ्र ही मेरे घुटने की गोलाई १७ इंच रह गई। फिर मैंने आपकी पुस्तक The new Science of healingद्वारा पूर्ण आरोग्यता प्राप्त की। फिर आपकी चिकित्सा रीति द्वारा मुझे व्याकुलता, दिमाग का खून से भर जाना, हृदय के पट्ठों में चर्बी का बढ़ जाना, गुर्दे और जिगर के रोगों से छुटकारा मिला। जिगर के रोग को डाक्टर असाध्य बतलाते थे। मुझे आँखों का रोग भी होने लगा था परन्तु वह भी जाता रहा।

अस्तु, यह पत्र जो आपकी सेवा में बिना माँगे भेजा जा रहा है इसे आप किसी भी सरकारी व कानूनी मतलब के लिए काम में ला सकते हैं। धन्यवाद।

द्रारीना बहेलिया }

आपका दास
कार्ल एच

अत्यन्त सिर पीड़ा

प्यारे मिस्टर कूहने,

कदाचित आपको स्मरण होगा कि मैं अपनी पुरानी सिर की

टुकड़े निकल चुके थे। आपके लिखने के अनुसार उस लड़की को स्टीम बाथ और फ्रिक्शन सिट्‌जबाथ दिये गये। शीघ्र ही अच्छी होकर यह अब एक सुन्दर लड़की हो गई है। मैंने आपकी चिकित्सा को फैलाने का यहाँ भरसक प्रयत्न किया है। मैं हृदय से आपको धन्यवाद देती हूँ।

मोश-लिलिमफील्ड } आपकी दासी—
डाक्टर यु की बी

आतशक अर्थात् सिफलिस, अनिद्रा, शिर का रोग

प्यारे मिस्टर कुहने,

मैंने सात आठ वर्ष पार से चिकित्सा की और गंधक से तीन बार स्नान किया परन्तु उसने रोग को शरीर से निकालने के बजाय उसे दबा दिया। जिसका फल यह हुआ कि मुझे सिर-दर्द होने लगा। नींद का अभाव रहने लगा और मैं पागल सा बन गया। ऐसी दशा में मैंने आपकी चिकित्सा रीति का सहारा लिया। केवल तीन स्नानों से ही मुझे आराम मिला और नींद आने लगी। मैंने अपने शरीर को निरोग बनाने के लिए चिरकाल तक आप की बताई चिकित्सा को जारी रक्खा। अब मैं नये सिरे से आनन्द भोग रहा हूँ।

वास्तव में आपकी चिकित्सा रीति की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। मैं आपकी कृपा के लिए सदैव अनुगृहीत हूँ।

लिपिजिग } आपका दास
एक

मूत्राशय का रोग, गुर्दों की जलन, बवासीर के मस्से, जलोदर

प्रियवर,

मैंने ऊपर लिखे हुए रोगों की चिकित्सा भिन्न-भिन्न औषधियों से की परन्तु तनिक भी लाभ न हुआ, दिन-दिन मेरा कष्ट बढ़ता

गया। अन्त में जब मैंने आप की चिकित्सा प्रारम्भ की तो मुझे लाभ हुआ। अब मैं इस दशा में हूँ कि कोई भी मनुष्य मुझे देख कर यह नहीं कह सकता कि मैं किसी भी समय बुरी दशा में रहा हूँगा। मैं प्रसन्नता पूर्वक आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

लिपजिग }

आप का दास
जी० एच०

स्मरण शक्ति की निर्बलता, पेट का बढ़ जाना, फेफड़े के रोग, जख्म पट्ठों की निर्बलता, बहरापन, कंठ के रोग, तीव्र ज्वर

प्यारे मिस्टर कुहने,

मैं दोनों कान से बहरी थी परन्तु अब अच्छी तरह सुन लेती हूँ। यहाँ तक कि घड़ी की टिक टिक भी सुनाई पड़ती है। पहले मुझे जरा सा काम करने पर भी थकावट मालूम होने लगती थी और टहलते-टहलते फेफड़ों की कमजोरी के कारण मैं हाँफने लगती थी पर अब मेरे शरीर में ये लक्षण नहीं रह गए। मेरी स्मरण शक्ति नष्ट हो गई थी। जरा-जरा सी बात पर मुझे क्रोध आता था और व्याकुलता मालूम होती थी परन्तु आप की चिकित्सा द्वारा मुझे सारे रोगों से छुटकारा मिल गया। आप की चिकित्सा में जादू का सा असर है।

एक बार, मैं कन्या को अपनी दासी बनाकर गाँव में ले गई। वहाँ उसके पाँव सूज आए। सिर में पीड़ा रहने लगी और ज्वर हो आया। अब न वह हिल डुल सकती थी न कोई काम कर सकती थी। मैंने उसे एक हिप बाथ और फिक्शन सिट्ज बाथ दिए। तीन ही दिन में वह चंगी हो गई।

पीटर्सबर्ग }

मिसेज ए० ई०

कठिन शिर पीड़ा

प्यारे मिस्टर कूहने,

आपकी बताई हुई रीति द्वारा स्नान करने से मेरी वर्षों कठिन शिर पीड़ा जाती रही। मैं जब तक जिन्दा रहूँगी आपके इन स्नानों का प्रचार करूँगी। ईश्वर करे आपकी शुभ चिकित्सा चिरकाल तक जारी रहे। मैं आप को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझती हूँ।

लिपजिग } आपकी दासी
मिसेज एम० श्मस्ज़

मिर्गी के दौरे, मूर्छा, खून की कमी

प्रियवर,

नौ वर्ष की आयु में मेरी कन्याको दौरे आने लगे। डाक्टरों ने बतलाया कि उसमें खून की कमी है। मैंने बहुत दिन तक डाक्टरों की दवाइयाँ की। परन्तु मर्ज घटने के बजाय बढ़ता गया। अन्त में डाक्टरों ने रोग को असाध्य बता दिया परन्तु आपकी चिकित्सा रीति द्वारा मेरी पुत्री के सारे रोग जड़से जाते रहे। मैं और मेरे सम्बन्धी आपके सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

बोहेमिया } आपका दास
एफ० एच०

जुकाम, ज्वर

प्यारे मिस्टर कूहने,

मैंने सख्त जुकाम और तीव्र ज्वर की दशा में आपकी चिकित्सा रीति की परीक्षा अपने ऊपर की। जितना शीघ्र मुझे लाभ हुआ उस पर मुझे आश्चर्य होता है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपकी चिकित्सा रीति का अधिक से अधिक प्रचार होगा। मेरे पास आपको धन्यवाद देने के लिए शब्द नहीं हैं।

होमबर्ग } आपका दास
चार्ल्स श्मस्ज़, तत्ववेत्ता
(Doctor of Philosophy)

काली खाँसी अर्थात् कुक्कुर खाँसी

प्यारे मिस्टर कूहने,

मेरे बालक को जोकि केवल १४ सप्ताह का था काली खाँसी हो गई थी। मैं आपकी चिकित्सा रीति से उसे दवा देने लगा और आपकी पत्र द्वारा आई हुई अनमोल सम्मतियों पर ध्यान रखा। उसे फिजरान हिप बाथ दिया गया और उसकी माँ उसे अपने पास सुलाने लगी ताकि उसे खूब पसीना आए। १२ दिन में बहुत आराम हो गया और खाँसी धीरे धीरे जाती रही। मैं जोर और दावे से कहता हूँ कि आपने काली खाँसी के सम्बन्ध में जो कुछ अपनी पुस्तक में लिखा है वह बिलकुल ठीक है। आपकी चिकित्सा द्वारा हमारा बालक शीघ्र आरोग्य हो गया इसके लिए मैं और मेरी स्त्री आपको हार्दिक धन्यवाद देते हैं और आपकी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

हार्जवर्ग } आपका सच्चा दास
ई० के०

न्यूरम थेनिया, न्यूरेलजिया, पट्ठों की पीड़ा, मिर्गी

प्यारे मित्र,

जब कि ड्रेसडेन नगर के दो प्रसिद्ध चिकित्सक मेरे रोग को असाध्य बतला चुके थे उस समय मुझे आपकी चिकित्सा से आराम हुआ। मैं तीन महीने से न्यूरस थेनिया, न्यूरेलजिया और मिर्गी के रोग में ग्रसित था। आपकी चिकित्सा से मैंने शीघ्र ही आरोग्य लाभ किया। धन्यवाद।

ड्रेसडन } आपका दास
एच० बी०

शिर का रोग, नेत्र का रोग, रुधिर न्यूनता, बेचैनी, पाँव की नसों का खिंच जाना, साधारण बलहीनता मासिक धर्म में पीड़ा

मुझे लड़कपन से ही जब मैं स्कूल में पढ़ती थी, सिर पीड़ा

का रोग हुआ। १४ वर्ष की उम्र म एक बार मैं गिर पड़ी जिससे मेरे पाँव की नसें खिंच गई और आगे चलकर इन्हीं के कारण मुझे चलना फिरना दूभर हो गया। इसी बीच में मेरी शिर पीड़ा भी बढ़ गई। मेरी आँखें भी खराब होने लगीं। किसी काम में मन न लगता था। बुखार आने लगा और ऐसा मालूम होने लगा कि मैं अन्धी हो जाऊँगी।

इस दशा में मैं मिस्टर लुई कुहने के कारखाने में गई। एक ही स्नान के पश्चात मुझे चैन मालूम पड़ा। मैंने बराबर स्नान जारी रखे और साधारण भोजन किया। पाँच महीने की चिकित्सा के पश्चात् मैं बहुत कुछ नीरोग हो गई हूँ। अब मैं अच्छी तरह देख सकती हूँ मेरे पाँव भी इतने अच्छे हो गए कि मैं बिना किसी कष्ट के चल फिर सकती हूँ। मैं अपने जीवनदान देने वाले को धन्यवाद देती हूँ और चाहती हूँ कि सब रोगी आप की चिकित्सा से लाभ उठावें।

लिपजिग } (मिसेज) मरी आर०

गठिया की पीड़ा

प्यारे मिस्टर कुहने,

मैं पिछले साल मई के महीने से बराबर गठिया की पीड़ा से दुखी था। बीच में कुछ आराम रहा परन्तु नवम्बर में मेरे ऊपर रोग का भयंकर हमला हुआ। डाक्टरों ने मुझे दक्षिण देश में जाकर रहने की सलाह दी। इस व्याकुल दशा में मेरी स्त्री ने आपकी सलाह ली। मैं आपकी उस अमूल्य सलाह के कारण सदैव आपका अनुगृहीत हूँ।

मैंने साधारण भोजन और आपके बताए हुए स्नान प्रारम्भ किये। स्नान करने स पहले तो रोग के चिह्न एक-एक करके ऐसे प्रकट हुए कि मुझे भय होने लगा। परन्तु शीघ्र ही मेरा भय झूठा साबित हुआ और मैं अच्छा होने लगा। मेरे मूत्र

का रङ्ग गेंहुआ था। केवल चौदह दिनों में मैं काम करने लगा। धीरे धीरे मैं नीरोग हो गया और अब मैं पूर्ण रीति से स्वस्थ और प्रसन्न हूँ। मैंने दृढ़ विचार कर लिया है कि जहाँतक हो सकेगा आपकी चिकित्सा रीति का प्रचार करूँगा। मैं हृदय से आपको धन्यवाद देता हूँ।

आप का दास
जूलियस एस०
राजकीय सनद रखनशाला
अध्यापक

उदर-पीड़ा, क्षुधा न लगना, चक्कर आना, हृदय के दोष, फेफड़े का दोष, निर्बलता

मेरी स्त्री जिसकी आयु इस समय ६१ वर्ष की है कई वर्षों से और विशेषतः सन् १८८८ से चक्कर आ जाने (दौरा आना) पेट की पीड़ा, भूख न लगना और कमजोरी के रोगों में फँसी थी। डाक्टरों के इलाज का कुछ भी असर न हुआ और सन् १८८९ में उसकी ऐसी दशा हो गई कि उसे अनेकों चक्कर आने लगे। उसकी पाचन शक्ति ऐसी मन्द हो गई कि कई सप्ताह तक वह शय्या पर से न उठ सकी। ऐसी दशा में मैंने होमियोपैथी की दवा की परन्तु वह भी कारगर न हुई।

अन्त में मैंने अपनी स्त्री को लुई कुहने के चिकित्सालय में भेज दिया। वहाँ उसे दो बार नित्यशः सिट्ज़ बाथ तथा साधारण भोजन दिया जाता था। एक ही सप्ताह में उसकी पाचन-शक्ति सुधर गई और पीड़ा भी घट गई। कुछ ही सप्ताह में चक्कर के दौरे व साँस लेने की कठिनता और अन्य दोष भी जाते रहे। थोड़े भोजन पर भी उसका बल बढ़ता गया।

अन्त में उसे निराश देखकर मैं दङ्ग रह गया। हम सब कुहनी महाराय के कृतज्ञ रहेंगे।

लिपजिग } गस्टव० पी०

आमाशय और आँतों की पुरानी जलन, स्नायु की खराबी, स्मरण शक्ति में निर्बलता

प्यारे साहब,

मुझे कठिन रोग था। पिछले चार वर्षों में भोजन की खराबी से मेरे स्नायु को अति हानि पहुँची थी। अपने दुःख से दुखी होकर मैंने कभी आत्मघात का भी विचार किया था परंतु अब मैं आनन्द से हूँ। मेरी स्मरण शक्ति ने अद्भुत उन्नति की है। आपकी चिकित्सा से मुझे बड़ा लाभ हुआ। अब मुझे शिर-पीड़ा नहीं होती।

मैं आप के चिकित्सालय की हर प्रकार की सफलता चाहता हूँ और आप को धन्यवाद देता हूँ।

सट (मारोविया) } आप का दास
ल्यु गो, बी,
(आस्ट्रिया का पोस्ट मास्टर)

सर्वाङ्ग बलहीनता, भूख का न लगना

प्रियवर महाराय,

आपकी लिखी हुई सम्मतियों के लिए जिनसे मुझे रोग पर विजय पाने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है, धन्यवाद देता हूँ। आपके लिखने के अनुसार प्रारम्भ में मैंने कुछ फ्रिक्शन हिप बाथ लिए जिनसे मेरे शरीर का आलस्य जाता रहा, कब्ज दूर हो गया और भूख लगने लगी। धीरे-धीरे आपकी चिकित्सा के सेवन से त्वचा का पीलापन गुलाबी होने लगा।

क्लीनफ्राक } आपका सेवक।
एफ० बी०

गठिया का दर्द

प्यारे महाराय !

मुझे यह लिखते हुए बड़ा आनन्द हो रहा है कि आप के स्टीम बाथ, और फ्रिक्शन हिप बाथ के सेवन से मेरा गठिया का रोग पूरी तौर से जाता रहा। केवल दो ही स्नानों में मैं अच्छी तरह चलने लगा था। मैं चाहता हूँ कि जो लोग गठिया से पीड़ित हैं उन्हें चाहिए कि आपकी चिकित्सा रीति से लाभ उठावें।

लिपज़िग } आप का दास।
जी० ई०

पेट की खराबी, प्रदर

प्रियवर महाराय जी,

मैं चाहती हूँ कि आपकी चिकित्सा के लिये मैं आपका धन्यवाद दूँ। अपने रोग के संबन्ध में मैंने वर्षों बड़े बड़े प्रसिद्ध डाक्टरों की सलाह ली परन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। आप की सहायता से अब मैं बिल्कुल नीरोग हो गई हूँ। आपकी कृपा के लिए एक बार फिर मैं हृदय से आपको धन्यवाद देती हूँ।

लिपज़िग } आपकी दासी
मिसेज़ ई० एल०

पाचन-शक्ति की खराबी

प्रियवर महाराय,

मुझे यह सूचित करते हार्दिक आनन्द हो रहा है कि जिसका उपचार एलोपेथिक व होमियोपैथिक डाक्टरों से कदापि न हो सका उसे आप की चिकित्सा रीति ने शीघ्र अच्छा कर दिया। मेरी स्त्री की पाचन शक्ति खराब हो गई थी। मृत्यु उसके निकट थी परन्तु आपकी चिकित्सा ने उसे बचा लिया। अब वह स्वस्थ्य और बलवती है। अब उसका वजन १०१ से १२६ पौंड हो गया है। धन्यवाद।

फार्नियन, लोयर लुबेटिया } आपका—
जी० डबल्यू०

मिर्गी

मुझे यह लिखते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि मिस्टर कूहने ने मेरे एक शिष्य बालक को जिसका नाम गोले था और जो मिर्गी के रोग में गिरफ्तार हो गया था अपनी जल-चिकित्सा द्वारा शीघ्र ही आराम कर दिया।

गोले को मिर्गी के दौरे बार-बार हुआ करते थे और उसमें पागलपन के लक्षण दीख पड़ने लगे थे। जिस दिन मिस्टर कूहने ने उसकी चिकित्सा प्रारम्भ की उस दिन से उसे एक भी दौरा नहीं आया। अब उसका रक्त रूप निखर आया है।

मिस्टर कूहने लगातार चार महिने तक बालक की चिकित्सा करते रहे।। इस बीच में उन्होंने बालक से किसी भी प्रकार की फीस नहीं ली बल्कि उलटे ही बालक को रुपये पैसे की सहायता देते रहे।

जो मनुष्य अपनी हानि उठाकर रोगियों की चिकित्सा करे, वह निश्चय रोगियों का सच्चा हितैषी होगा।

लिपजिग }

लेखक—
ई० एच०

अति शिर पीड़ा

प्रियवर मिस्टर कूहने,

मुझे लड़कपन से ही शिर का दर्द रहता था। आगे चलकर यह रोग ऐसा बढ़ा कि असाध्य प्रतीत होने लगा। एक बार तो मुझे लगातार १४ दिन तक सर दर्द बना रहा। ऐसा मालूम होता था कि मस्तिष्क जला जा रहा है। सिर पीड़ा का प्रभाव मेरी आँखों पर भी पड़ता था और वे बहुत कुछ खराब हो चली थीं। आपकी चिकित्सा रीति द्वारा ऐसा भयानक रोग भी शीघ्र ही आराम हो गया। अब मैं भली भाँति काम कर सकता हूँ और समझता हूँ कि मुझे पुनर्जीवन मिला है।

बिना किसी सहायता के जीने पर चढ़ने लगी। तीन मास के पश्चात रोग के सम्पूर्ण चिन्ह जाते रहे। अब दोनों पैरों की लंबाई बराबर होगई है और वह भलीभाँति चलती फिरती है।

लिपज़िग } मिसेज़ मिथा एच०

गठिया, कब्ज, बवासीर, टाइफस, गर्भाशय का टल जाना, काली खाँसी, रक्त ज्वर

प्यारे कूह्नी साहेब,

मैं पहिले अपना जीवन सुचारु रूप से व्यतीत नहीं करता था। इसका प्रभाव यह हुआ कि मुझे गठिया का रोग हो गया। मैं काम करने के अयोग्य हो गया और जीवन से तङ्ग रहने लगा। मैंने आपकी पुस्तक पढ़कर फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ लिया, स्टीम बाथ लिया, अनुत्तेजक भोजन किया और खिड़कियाँ खोलकर सोया। अब पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न हूँ।

मेरी स्त्री गर्भाशय के टेढ़ेपन के कठिन रोग में ग्रस्त थी। जब उसने मुझे फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ लेते देखा तो वह भी सरल जीवन व्यतीत करने लगी। शीघ्र ही उसे बहुत लाभ हुआ। रात्रि को उसे गहरी नींद आने लगी। वह बलवती हो गई। छः सप्ताह में उसके आमाशय की खराबी और बवासीर भी जाती रही। इस प्रकार उसे रोगों से छुटकारा मिला। फिर उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। बालक स्वस्थ और निरोग है।

दो वर्ष हुए मेरी स्त्री के टाइफाइड ज्वर ने पकड़ा परन्तु आपकी सम्मति से उसे शीघ्र आराम हो गया।

मेरा छठा बालक पौने पाँच वर्ष की उमर में रक्त ज्वर से ग्रस्त हो गया और उसी सिलसिले में उसे सन्निपात हो गया। परन्तु आपके बताये हुए स्नानों द्वारा एक महीने में सारी शिकायत दूर हो गई और बालक चङ्गा हो गया।

प्रत्येक रोग में आपकी चिकित्सा जादू का सा असर करती है। उसमें अशर्फियाँ भी खर्च नहीं होती। थोड़े से परिश्रम से ही सारा रोग कट जाता है। मैं आपको ऐसी चिकित्सा रीति के प्रचलित करने पर बधाई देता हूँ।

एलबर फील्ड } आपका शुभचिंतक—
बी० एच०

मूत्राशय में रग का रोग

डियर मिस्टर कुहने,

मुझे दो दिन तक प्रातःकाल पेशाब करने में बड़ा कष्ट हुआ और बाएँ कूल्हे से ऊपर थोड़ी देर तक पीड़ा भी मालूम हुई। दोपहर में पेशाब करते समय एक पथरी का टुकड़ा निकला और इसके पश्चात् कई दिन तक पथरी रेत की भाँति गँदला पेशाब आता रहा। फिर एक छोटा सा पथरी टुकड़ा निकला, परन्तु इस बार पीड़ा न हुई।

इससे मुझे बड़ी खुशी हुई। आपकी पुस्तक में मूत्राशय की पथरियों की बाबत घुल घुलकर निकलना लिखा है।

शीघ्र ही मैं चङ्गा होगया और अब स्वस्थ हूँ। ऐसी दशा को आपको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता।

ब्रेस्टड } आपका दास—
ए०

सर्वांग निर्बलता, नेत्र का रोग, आमाशय रोग

प्रियवर मिस्टर कुहने,

मेरी स्त्री १४ वर्षों से आमाशय, घबराहट और निर्बलता के रोग में ग्रस्त थी। अनेकों डाक्टरों की दवायें उसे दी गई पर लाभ कुछ भी न हुआ। उसकी दशा बिगड़ती गई। वह निर्बल हो गई। उसकी आँख भी कमजोर हो गई। अब न तो वह पढ़ सकती थी और न घर का कुछ काम कर सकती थी।

की असाधारण बनावट को देखकर संतान न उत्पन्न करने की सलाह दी थी परन्तु आपकी सलाह का मैं कृतज्ञ हूँ जिसके कारण अन्त के दो प्रसव बिना दाई की सहायता के सरलता से हुए थे। पिछला बालक अन्य बालकों से भारी था।

आपकी } आपका दास—
पाल के०

क्षयी रोग।

प्रियवर,

जब दूसरे डाक्टरों ने मेरे बालक के रोग को असाध्य बता दिया तो भाग्यवश मैंने आपकी The new science of healing नामक पुस्तक खरीदी और उसी के अनुसार बालक की चिकित्सा करने लगी। शीघ्र ही बालक चंगा हो गया। हम सबों को आश्चर्य हुआ कि बालक कैसे इतनी जल्दी अच्छा हो गया। धन्यवाद।

लाइपिगस्लस्ट } आपकी दासी—
मिसेज पी० आर्ई०

जलन का घाव

प्रिय महाशय,

मेरे बड़े लड़के ने एक दिन खौलते हुए पानी में हाथ डाल दिया जिससे इसका हाथ जल गया और उसमें घाव हो गए। मैंने जले हुए घावों की चिकित्सा आपकी पुस्तक की बताई हुई रीति से की। फल आश्चर्य जनक हुआ। एक सप्ताह के भीतर जला हुआ प्रत्येक घाव अच्छा हो गया। यहाँ तक कि इसके दाग भी शेष न रहे। आपको धन्यवाद देते हुए मुझे आनन्द हो रहा है।

टेनजर्न } आपका सेवक—
हेनरिक बी०

कान का बहना, कर्ण पीड़ा, मौसमी ज्वर

प्रियवर महाराय जी,

मैं आनन्द से हूँ। मेरे कान का बहना, उसकी पीड़ा और मौसमी ज्वर आदि सभी अच्छे हो गए हैं। मैं अब भी प्रति दिन एक फ्रिक्शन हिप बाथ नित्य सबेरे लेता हूँ ताकि भविष्य में फिर रोग न हो सके।

वनिजुला, दक्षिणी अमेरिका — आपका दास— फार्लोस एल० बी०

मिर्गी और हाथ पैरों का ऐंठना

डियर मिस्टर कूह्ने,

मेरा १० वर्ष का छोटा बालक आपकी सहायता से मिर्गी और हाँथ पाँव के ऐंठन के रोगों से अच्छा हो गया। मैं इसके लिए आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। डाक्टरों के जवाब दे देने पर मैंने आपकी अमूल्य चिकित्सा का हाल सुना। अस्तु, आपकी सम्मति के अनुसार हमने उसे प्रतिदिन स्नान कराये और स्वाभाविक भोजन दिया। एक ही सप्ताह में मेरा बालक चंगा होकर स्कूल जाने लगा। मैं आपकी चिकित्सा रीति की प्रशंसा नहीं कर सकता। आपको फिर धन्यवाद देता हूँ।

मोन फील — आपका दास— फँज-एनटनी० बी०

आमाशय की खराबी, छाती की कमजोरी, फेफड़े की जलन

१६ वर्ष तक मैं आमाशय की खराबी के रोग में जकड़ा रहा। बिना दवा के पाखाना न होता था। पिछले चार पाँच वर्षों तक तो यह दशा रही कि पेशाब भी ठीक न होता था। मेरी छाती कमजोर थी, फेफड़ों में जलन थी। मैंने जिनेवा नगर में अनेकों डाक्टरों की सम्मति ली पर कुछ लाभ न हुआ। जब मैंने मिस्टर कूह्ने की सम्मति के अनुसार चिकित्सा

की थो मुझ पर जादू का असर हुआ। मैं शीघ्र अच्छा हो गया। अब मैं अपने काम भलीभांति कर लेता हूँ। होटल का प्रबन्ध और पत्र आदि स्वयं लिखता हूँ। मुझे मिस्टर कुह्ने की चिकित्सा रीति ने नवजीवन दान दिया है।

रवाजसी बाद
कैठन फाईबग (स्वीजर लैंड) } ई० डबल्यू० एस०

कान का बहना, शिर पीड़ा, कान और कंठ में खून जमना, कान की छोटी हड्डियों में मवाद निकलना

प्यारे मिस्टर कुह्ने,

गत सात वर्षों से मेरा पुत्र कान व कंठ के रोगों से ग्रसित था। पिछले कुछ दिनों से उसके कान से मवाद निकलने लगा और हर समय शिर में दर्द रहने लगा। मैंने उसे नाक, कान और कंठ के रोगों की चिकित्सा करने वाले डाक्टरों को दिखाया। पीछे से होमियोपैथिक डाक्टर से भी सलाह ली पर कुछ लाभ न हुआ। अन्त में अपने पुत्र को लेकर लिपजिग नगर पहुँचा और आपकी सम्मति लेकर दवा करने लगा। शीघ्र ही मेरा पुत्र अच्छा हो गया। मैं इसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि आप कृपा करके एक प्रति The new Science of healing की शीघ्र भेज देंगे।

वाल मार्शिन } आपका दास—
एम० नो एस०

मूत्राशय की पथरी, सुगमता से बच्चा जनना फेफड़े का रोग

प्रिय मिस्टर कुह्ने,

मैं प्रसन्नता पूर्वक आपको सूचित करता हूँ कि अब मैं अच्छा हूँ। एक पिसनहारे का बालक मूत्राशय की पथरी के

रोग में फँस गया था। उसने आपकी बताई हुई रीति से व्यवहार किया जिससे वह शीघ्र ही चङ्गा हो गया। इसी प्रकार एक ३७ वर्ष की स्त्री को बच्चा जनने में बड़ा कष्ट हुआ था। वह अपने बालक को दूध न पिला सकती थी। उसने आपकी रीति पर अमल किया और शीघ्र अच्छी हो गई।

एक मनुष्य को फेफड़े का रोग है। वह आपकी चिकित्सा रीति का पालन कर रहा है और उसकी दशा दिन पर दिन सुधरती जाती है। आपकी चिकित्सा-रीति यहाँ बड़ी उन्नति कर रही है।

जर्मेनिया कोन्टा खे मेरा माज़ील }   आपका—
एच० एस०

नेत्र रोग चेहरे फुंसियाँ कण्ठरोग शीतला, रक्तज्वर

प्यारे मिस्टर कूहने,

बचपन में मुझे नेत्र रोग था जो आगे चल कर अच्छा हो गया। लेकिन उस समय मेरे चेहरे की त्वचा में सदैव पीड़ा देने वाली एक प्रकार की फुंसियाँ बाकी रह गई थीं। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष मुझे कंठ रोग, शीतला और रक्त ज्वर से ऐसी पीड़ा होती जाती थी जो असह्य होती थी। उस समय के रोगों पर ध्यान देने से मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आपकी चिकित्सा रीति द्वारा मुझे जो लाभ हुआ वह शब्दों में बताया नहीं जा सकता। अब मैं पूर्ण रीति से स्वस्थ और सुखी हूँ। मैं हृदय से आपको धन्यवाद देती हूँ।

ओटिनजेन }   आपकी दासी—
लीना एम०

रोग में फँस गया था। उसने आपकी बताई हुई रीति से व्यवहार किया जिससे वह शीघ्र ही चङ्गा हो गया। इसी प्रकार एक ३७ वर्ष की स्त्री को बच्चा जनने में बड़ा कष्ट हुआ था। वह अपने बालक को दूध न पिला सकती थी। उसने आपकी रीति पर अमल किया और शीघ्र अच्छी हो गई।

एक मनुष्य को फेफड़े का रोग है। वह आपकी चिकित्सा रीति का पालन कर रहा है और उसकी दशा दिन पर दिन सुधरती जाती है। आपकी चिकित्सा-रीति यहाँ बड़ी उन्नति कर रही है।

जर्मेनिया कोन्टा डे मेरा ब्राजील } आपका—
एम० एस०

नेत्र रोग चेहरे फुंसियाँ कण्ठरोग शीतला, रक्तज्वर

प्यारे मिस्टर कुहने,

बचपन में मुझे नेत्र रोग था जो आगे चल कर अच्छा हो गया। लेकिन उस समय मेरे चेहरे की त्वचा में सदैव पीड़ा देने वाली एक प्रकार की फुंसियाँ बाकी रह गई थीं। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष मुझे कंठ रोग, शीतला और रक्त ज्वर से ऐसी पीड़ा होती जाती थी जो असह्य होती थी। उस समय के रोगों पर ध्यान देने से मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आपकी चिकित्सा रीति द्वारा मुझे जो लाभ हुआ वह शब्दों में बताया नहीं जा सकता। अब मैं पूर्ण रीति से स्वस्थ और सुखी हूं। मैं हृदय से आपको धन्यवाद देती हूँ।

ओटनजेन } आपकी दासी—
लीना एम०

बवासीर के मस्सों का रोग, नींद न आना, क्रोध का वेग

प्रियवर,

मैंने आपकी सम्मति पर पूर्ण रीति से ध्यान दिया। जैसी आपने सलाह दी वैसे ही मैंने स्नान और भोजन किये। मुझे अच्छा लाभ हुआ। तीन वर्ष के पश्चात् जब मैं हँसा तो मेरी स्त्री और मेरे बच्चे आश्चर्य करने लगे। मेरी अँतड़ियाँ अब ठीक तौर से काम करती हैं। बवासीर के मस्से अब दूर हो गए हैं। और अब मैं भली-भाँति सो सकता हूँ। पहले की भाँति अब मुझे शीघ्र ही क्रोध भी नहीं आ जाता। आज्ञा दीजिए कि मैं आपको धन्यवाद दूँ।

सेंटपीटर्स बर्ग (रूस) } आपका सेवक—
एम० डबल्यू०

जलोदर, पित्त, प्लूरिसी

प्यारे मिस्टर कुहने,

आप सचमुच रोगियों के लिए मसीहा हैं। आप को धन्यवाद देने के लिये मेरे पास शब्द ही नहीं हैं। मैं दो वर्ष से प्लूरिसी जैसे भयानक रोग में फँसी थी। डाक्टरों ने मेरी दशा देखकर जवाब दे दिया था। केवल आपही के नुसखे से मैं अच्छी हुई। चिकित्सा प्रारम्भ करते ही मेरी तबीयत अच्छी होने लगी और पेट के ऊपर की रसौली घुलने लगी। धीरे धीरे सारा रोग दूर हो गया और मैं पूरी तौर से स्वस्थ हो गई हूँ।

मिनसीफोन स्वीटजर लैंड } आपकी दासी—
मिस इवा एम०

गिल्टी का बढ़ आना, दाँत पीड़ा, नस रोग गले की सूजन और जलन, फेफड़े की सूजन, दमा, स्वप्नदोष

प्रियवर मिस्टर कुहन,

चिरकाल से मैं दंतपीड़ा, दाँत और पाँव ओर की गिल्टियाँ

की सूजन, नेत्र की कमजोरी कंठ की जलन आदि रोगों के फंदे में पड़ा था। आपकी सम्मतियों पर मैंने यथा शक्ति अमल किया और इसका फल अच्छा हुआ। मुझे फेफड़ों की जलन, दमा और स्वप्नदोष का भी रोग था। जो अब अच्छा हो गया है। मुझे पूरा विश्वास हो रहा है कि अगर मैं ठीक समय पर सँभल न गया होता तो अब तक मैं कभी स्वर्ग पयान कर गया होता, परन्तु ईश्वर की कृपा से मैं ठीक मार्ग पर आ गया। मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

एसकोन } आपका वफादार
पादरी इ०

गुदा में नासूर, आँत का फोड़ा

प्रियवर,

आपके दूसरे पत्र के उत्तर में, जिसमें कि आपने दशा पूछी है, मैं प्रसन्नता पूर्वक आपको सूचित करती हूँ कि दो महाह हुए गुदा का नासूर और आँत का फोड़ा दोनों बिलकुल अच्छे हो गए हैं। आपकी सम्मति के अनुसार मैंने जनवरी मास के दूसरे सप्ताह में प्रति दिन दो या तीन फ्रिक्शन सिट्ज बाथ लेने शुरू कर दिये। मैं भोजन भी बराबर अनुकूल जक करती रही। फल स्वरूप अब मैं पूर्ण नीरोगी हूँ। आपकी चिकित्सा रीति का दिनों दिन प्रचार हो, यही मेरी अभिलाषा है।

होल्ट (डेनमार्क) } जूलिया एक्स०

अत्यन्त घबड़ाहट, हस्तमैथुन

मेरे बालक को हस्तमैथुन और घबड़ाहट का रोग लग गया था। मैंने उसे लाख डराया, धमकाया पर कुछ लाभ न हुआ। अब मैंने उसे फ्रिक्शन सिट्ज बाथ और सात्विक भोजन दिया तो वह क्रमशः अच्छा हो गया। मैं मिस्टर कुहने की चिकित्सा

बवासीर के मसों का रोग, नींद न आना, क्रोध का वेग

प्रियवर,

मैंने आपकी सम्मति पर पूर्ण रीति से ध्यान दिया। जैसी आपने सलाह दी वैसे ही मैंने स्नान और भोजन किये। मुझे अच्छा लाभ हुआ। तीन वर्ष के पश्चात् जब मैं हँसा तो, मेरी स्त्री और मेरे बच्चे आश्चर्य करने लगे। मेरी अँतड़ियाँ अब ठीक तौर से काम करती हैं। बवासीर के मस्से अब दूर हो गए हैं। और अब मैं भली-भाँति सो सकता हूँ। पहले की भाँति अब मुझे शीघ्र ही क्रोध भी नहीं आ जाता। आज्ञा दीजिए कि मैं आपको धन्यवाद दूँ।

सेंटपीटर्सबर्ग (रूस) } आपका सेवक—
एम० डब्ल्यू०

जलोदर, मिल, प्लूरिसी

प्यारे मिस्टर कुहने,

आप सचमुच रोगियों के लिए मसीहा हैं। आप को धन्यवाद देने के लिये मेरे पास शब्द ही नहीं हैं। मैं दो वर्ष से प्लूरिसी जैसे भयानक रोग में फँसी थी। डाक्टरों ने मेरी दशा देखकर जवाब दे दिया था। केवल आपही के नुसखे से मैं अच्छी हुई। चिकित्सा प्रारम्भ करते ही मेरी तबीयत अच्छी होने लगी और पेट के ऊपर की रसौली घुलने लगी। धीरे धीरे सारा रोग हवा हो गया और मैं पूरी तौर से स्वस्थ हो गई हूँ।

विन्टरथर (स्विटज़रलैंड) } आपकी दासी—
मिस इवा एम०

गिल्टी का बढ़ जाना, दाँत पीड़ा, नज़ला गले की सूजन और जलन, फेफड़े की सूजन, दमा, स्वप्नदोष

प्रियवर मिस्टर कुहने,

चिरकाल से मैं दंतपीड़ा, दाँत और बगल और की गिल्टियाँ

की सूजन, नेत्र की कमजोरी कंठ की जलन आदि रोगों के फंदे में पड़ा था। आपकी सम्मतियों पर मैंने यथा शक्ति अमल किया और इसका फल अच्छा हुआ। मुझे फेफड़ों की जलन, दमा और स्वप्नदोष का भी रोग था। जो अब अच्छा हो गया है। मुझे पूरा विश्वास हो रहा है कि अगर मैं ठीक समय पर सँभल न गया होता तो अब तक मैं कभी स्वर्ग पयान कर गया होता, परन्तु ईश्वर की कृपा से मैं ठीक मार्ग पर आ गया। मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

एसकोन } आपका वफादार
पादरी ई०

गुदा में नासूर, आँत का फोड़ा

प्रियवर,

आपके दूसरे पत्र के उत्तर में, जिसमें कि आपने दशा पूछी है, मैं प्रसन्नता पूर्वक आपको सूचित करती हूँ कि दो सप्ताह हुए गुदा का नासूर और आँत का फोड़ा दोनों बिलकुल अच्छे हो गए हैं। आपकी सम्मति के अनुसार मैंने जनवरी मास के दूसरे सप्ताह में प्रति दिन दो या तीन फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ लेने शुरू कर दिये। मैं भोजन भी बराबर अनुचें जक करती रही। फल स्वरूप अब मैं पूर्ण नीरोगी हूँ। आपकी चिकित्सा रीति का दिनों दिन प्रचार हो, यही मेरी अभिलाषा है।

होल्ट (डेनमार्क) } जूलिया एल०

अत्यन्त घबड़ाहट, हस्तमैथुन

मेरे बालक को हस्तमैथुन और घबड़ाहट का रोग लग गया था। मैंने दस लाख कराया, धमकाया पर कुछ लाभ न हुआ। जब मैंने उसे फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ और सात्विक भोजन दिया तो यह क्रमशः अच्छा हो गया। मैं मिस्टर कुहने की चिकित्सा-